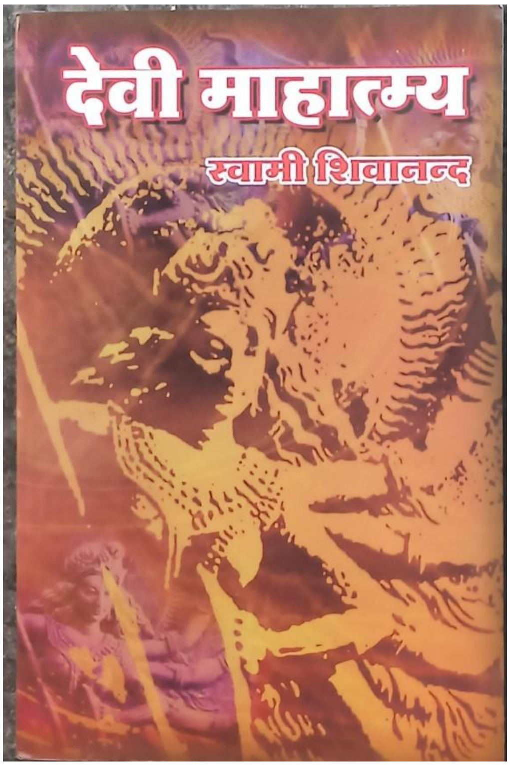
देवी माहात्म्य
स्वामी शिवानन्द

देवी माहात्म्य

(श्री दुर्गा सप्तशती)

परम पूज्य गुरुदेव की अंगरेजी पुस्तक 'देवी माहात्म्य' के मूलमाग का पाठ-विधि सहित अविकल हिन्दी

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका

शिवानन्द राधिका अशोक

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर- २४९१९२

जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org. wwwldishq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण : २००७

द्वितीय हिन्दी संस्करण : २०१८

(१,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

ISBN 81-7052-216-1

HS 15

PRICE : ₹115/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग- वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी गढ़वाल,

उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२ ' में मुद्रित ।

For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय वक्तव्य

दुर्गा सप्तशती अथवा देवी माहात्म्य एक अनूठी पुस्तक है। यह शाक्त धर्म का मूल आधार है। यह मन्त्रों का शक्तिशाली संग्रह है। इस पुस्तक का प्रत्येक श्लोक एक गत्यात्मक शक्ति है जो मानव की प्रकृति पर विजय पाने में शक्तिशाली ढंग से कार्य करता है।

प्राचीन समय से ही माँ को ईश्वर की भाँति माना गया है। ऋग्वेद भी इस तथ्य का प्रमाण देता है कि प्राचीन समय में भी यह दृढ विश्वास था कि विश्व की शासक सर्व कृपालु माँ है तथा माँ अधिकतर मानव-मन पर प्रभाव डालती है। पिता नहीं, जो अधिक परिश्रमी समझा जाता है।

प्रकृति के तीन कार्यों– सृजन, संरक्षण तथा संहार के सम्बन्ध में देवी माँ की दुर्गा अथवा काली, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में आराधना की जाती है। वास्तव में ये तीन पृथक्-पृथक् देवियाँ नहीं हैं, वरन् ये एक ही निराकार देवी तीन विभिन्न रूपों में हैं। दुर्गा पूजा अथवा नवरात्रि महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती की नौ दिन आराधना का अवसर है जब विश्वमाता की तीन प्रकार से आराधना की जाती है। इसमें यही समझाया गया है।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादिका का विनम्र निवेदन

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में बारंबार प्रणाम । परम पूज्य गुरुदेव ने इस पुस्तक में दुर्गासप्तशती का अर्थ दिया है, इसके पाठ करने की विधि बताई है और देवी के मानव जीवन में महत्व पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी बताया है कि इसका पाठ सभी को करना चाहिए; क्योंकि देवी माँ वह कल्याणमयी माँ हैं, जिनसे हमारे बाहरी और आंतरिक संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है और उनकी कृपा से ही हम हमारे मानव जीवन के लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त कर पाते हैं। उनकी कृपा के बिना जीवन में किसी प्रकार की प्रगति संभव नहीं है, क्योंकि वे इस संसार की सृष्टा हैं। वे इस संसार की रचना करने वाले और पोषण करने वाले तथा संहार करने वाले प्रभु का ही साकार रूप हैं। अतः देवी को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से अभिन्न मानते हुए उनकी आराधना करनी चाहिए। और देवी माँ की आराधना हेतु नवरात्रि का समय सर्वश्रेष्ठ है। पुस्तक के अन्त में परम पूज्य गुरुदेव के द्वारा सन् १९४२ से ले कर सन् १९५६ तक प्रतिवर्ष नवरात्रि पर दिए गए संदेश दिए गए हैं, जो अत्यंत प्रेरणाप्रद हैं।

हमें आशा नहीं पूर्ण विश्वास है कि परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की पुस्तक देवी माहात्म्य के प्रथम हिंदी संस्करण से हिंदी भाषी जन प्रेरणा प्राप्त करेंगे और लाभान्वित होंगे; क्योंकि गुरुदेव स्वयं भगवद्साक्षात्कार प्राप्त संत थे और वे प्रत्येक प्राणी में ईश्वर के साक्षात दर्शन किया करते थे।

सदा गुरुदेव की सेवा में
शिवानन्द राधिका अशोक

श्री श्री चंडी पढ़ने के सामान्य नियम

प्रातःकाल स्नान एवं अपनी नित्य पूजा (संध्या) की समाप्ति के पश्चात पूजा करने वाले को एक शुद्ध स्वच्छ आसन पर उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके बैठना चाहिए तथा मन एकाग्र और भक्ति से पूर्ण होना चाहिए। श्री श्री चंडी का पाठ दृढ़ आस्था, भक्ति और शुद्ध उच्चारण के साथ करना चाहिए। पाठ की अवधि में व्यक्ति को न तो बात करना चाहिए न कुछ विचार करना चाहिए, न सोना चाहिए न छींकना चाहिए, न जंभाई लेना चाहिए न ही थूकना चाहिए। इसका पाठ करते समय उसे देवी का जो भी रूप रुचिकर लगे, उसका ध्यान करना चाहिए। अध्याय को पूर्ण किए बिना बीच में उठना नहीं चाहिए तथा पुस्तक को विशेष रूप से ताँबे की थाली के ऊपर रखना चाहिए। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति एवं प्रारंभ के पूर्व घंटी बजाना चाहिए। पाठ प्रारम्भ करने के पूर्व संकल्प तथा देवी पूजन करना आवश्यक है।

श्री श्री चंडी पाठ हेतु सप्ताह में मंगलवार, शुक्रवार तथा शनिवार का दिन विशेष रूप से अत्यंत शुभ है। अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी देवी की तिथियाँ हैं। इसका पाठ निम्न क्रम से किया जाना चाहिए :-

१. देवी सूक्त, २. देवी कवच,
३. अर्गला स्तोत्र, ४. कीलकम्,
५. रात्रिसूक्तम्, ६. देवीमाहात्म्य,
७. फल श्रुति और ८. क्षमा प्रार्थना ।

श्री श्री चंडी का तीन भागों में विभाजन किया गया है :-

१. प्रथम, २. मध्यम और ३. उत्तर ।

प्रथम अध्याय में महाकाली की महिमा बतायी गयी है, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अध्याय में महालक्ष्मी की महिमा का वर्णन किया गया है तथा अंतिम नौ अध्याय ५ से १३ तक में श्री महासरस्वती की महिमा का गान किया गया है। जो श्री श्री चंडी का पाठ आस्था और भक्ति के साथ करता है उसे संपत्ति, दीर्घायु और मुक्ति प्राप्त होती है ।

१. देवी सूक्त (ऋग्वेद के अनुसार)

महर्षि अम्बरीन की पुत्री वाक के द्वारा इन ८ श्लोकों की रचना की गयी है, ये ऋग्वेद से लिए गये हैं, इसमें दस मंडल, दस अनुवाक, १२५ सूक्त हैं। ये श्लोक वाक ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसे अभिव्यक्त करते हैं, वाक ने ब्रह्मशक्ति से स्वयं को एकरूप कर लिया था तथा स्वयं को ११ रुद्रों, १२ आदित्यों तथा सभी देवों, इन्द्रों, अग्नि और अश्विनी कुमारों–जो कि उनके द्वारा पोषित है और जो संपूर्ण जगत के स्रोत, आश्रय और आधार हैं, के रूप में अभिव्यक्त किया था। वे वास्तव में ब्रह्माण्डरूपिणी हैं।

२. देवी कवचम्

देवी कवचम् में ६१ श्लोक हैं, यह मार्कण्डेय पुराण में है। यह कवच पाठ करने वाले के शरीर के सभी अंगों की सभी स्थानों तथा सभी कठिनाइयों में रक्षा करता है। इसमें शरीर के प्रत्येक भाग को इंगित किया जाता है और इसके बाद आनंद, संपत्ति, स्वास्थ्य, शक्ति एवं थ्य, शक्ति एवं समृद्धि हेतु देवी की विभिन्न नामों से पूजा की जाती है।

३. अर्गला स्तोत्र

इसमें ऋषि मार्कण्डेय २७ प्रेरक श्लोकों में अपने शिष्यों को देवी का माहात्म्य बता रहे हैं। उनका सभी नामों और रूपों में वर्णन किया गया है और प्रत्येक श्लोक के अन्त में देवी से भौतिक समृद्धि, शारीरिक स्वास्थ्य, यश और विजय हेतु प्रार्थना की गयी है।

४. कीलकम्

इसमें ऋषि मार्कण्डेय अपने शिष्यों को भक्तों को देवी माहात्म्य का पाठ करते समय जिन बाधाओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें दूर करने की विधि और साधन बता रहे हैं। कीलकम् के पाठ से देवी का आशीर्वाद, आध्यात्मिक समन्वय तथा मन की शांति और सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

५. रात्रि सूक्तम्

रात्रिसूक्त (८ श्लोक) ऋग्वेद से लिया गया है। इसमें १० मंडल, १० अनुवाक, १२७ सूक्त हैं, जो यह दर्शाता है कि देवी की अनादि काल से पूजा होती आई है। इसमें देवी का विश्व के सर्वव्यापक परम ईश्वर जो कि ओंकार के रूप में प्रगट हुई है, के रूप में वर्णन किया है। देवी वह है जो हमारी प्रार्थनाओं को पूर्ण करती हैं।

प्रस्तावना

देवी माहात्म्य अथवा दुर्गा सप्तशती इस संसार में अनूठी पुस्तक है। यह शाक्त धर्म का मूल और आधार है। यह प्रत्येक और सभी के लिए एक कामधेनु है। यह मनुष्य जो भी कामना करता है, उसे पूर्ण करती है। यह इस संसार में भक्ति तथा परलोक में मुक्ति प्रदान करती है। यह प्रारंभ से ले कर अन्त तक मन्त्रों का शक्तिशाली भण्डार है। इस ग्रंथ का प्रत्येक श्लोक एक गत्यात्मक शक्ति है जो कि मनुष्य की प्रकृति पर विजय पाने में शक्तिशाली ढंग से कार्य करती है।

इस पुस्तक का प्रथम श्लोक यह प्रेरणा देता है कि संपूर्ण पुस्तक देवी मन्त्र 'ह्रीं' की पूर्ण व्याख्या है। इस पुस्तक की अनेक व्याख्याऐं उपलब्ध हैं जो इसकी दार्शनिक ढंग से अथवा सामान्य ढंग से व्याख्या करती हैं। जो भी इस संसार में एक अच्छा और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसे सप्तशती के मन्त्रों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

माँ की भाँति परमेश्वर की धारणा निरर्थक नहीं है। ऋग्वेद भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है तथा प्राचीन समय में भी यह दृढ़ विश्वास था कि सर्व कृपालु माँ ही शासक है। पिता जो कि अधिक श्रम करने वाला है, उसकी तुलना में माँ अधिकतर मानव मन को अच्छी लगती है। देवी, दुर्गा अथवा श्री के रूप में दिव्यता की धारणा मात्र सिद्धान्त नहीं है, बल्कि यह जीवन का व्यावहारिक तरीका है। यह एक विशेष दृष्टिकोण है जिसे एक ओर नहीं रखा जा सकता है। यह किसी भी धार्मिक विश्वास के मत की भाँति महत्वपूर्ण है तथा यह हिंदू धर्म की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखाओं वैष्णव, शैव तथा शाक्त में से एक है। यहाँ तक कि एक सूक्ष्म दार्शनिक भी शक्ति की धारणा को छोड़ नहीं सकता। उसके लिए वह अनिवार्य रूप से शक्ति की मूर्ति है। उसे शक्ति से प्रेम है। सर्वोच्च बुद्धि तथा सर्वाधिक काल्पनिक आत्मविद्या, ज्ञानशक्ति का प्राकट्य मात्र है और यह शक्तिवाद की सीमा से बाहर नहीं है। इसलिए अब हम ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए महिमामयी माँ की पूजा करें, उपासना करें।

सप्तशती का नित्य इस प्रकार पाठ किया जाना चाहिए कि यह सात दिनों में पूर्ण हो जाये। निम्न क्रमानुसार अध्याओं के विभाग करके पाठ करना चाहिए १, २, १, ४, २, १, २ प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय; चतुर्थ; पंचम, षष्ठम, सप्तम; तथा अष्टम, नवम तथा दशम; एकादश; द्वादश और त्रयोदश। यही परम्परागत नियम है। सप्तशती को मन की किसी भी कामना की पूर्ति के लिए किया जा सकता है और यह पूर्ण होती है। इसे जीवन के किसी भी उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जा सकता है और यह अवश्य ही पूर्ण होगा। इसका प्रयोग आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए किया जा सकता है और

आपको देवी का आशीर्वाद प्राप्त होगा। शक्ति सभी कामनाओं, ज्ञान एवं क्रियाओं क मूलाधार है, इसलिए मनुष्य कभी भी शक्ति के साम्राज्य से बाहर नहीं जा सकता है। सम्पूर्ण मनुष्य शक्ति मात्र है, इसलिए उसे शक्ति की आराधना से सब कुछ प्राप्त है सकता है।

देवी दुर्गा का आशीर्वाद आप सभी के ऊपर हो, वे आप सभी को आध्यात्मिव ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार प्रदान करें।

देवी माँ की भारतीय धारणा

सृष्टि के प्रारंभ से ही जब आदिम मानव स्त्री प्रधान समाज में निवास करता था, देवी माँ की पूजा की जाती थी। बाद में जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ स्त्री प्रधान समाज का स्वरूप धीरे-धीरे समाप्त हो गया और पिता परिवार का प्रमुख बन गया। वहाँ उसे अधिकारी माना जाने लगा और प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर निर्देशन तथा स्वीकृति हेतु देखने लगा। ईश्वर की धारणा में भी परिवर्तन आया और ईश्वर के पिता के स्वरूप की स्थापना हो गई। लेकिन माँ की पूजा भी साथ-साथ चलती रही। चूँकि यह धारणा मनोवैज्ञानिक रूप से भक्त के मन को अधिक अच्छी लगी, माँ के प्रति बच्चे का आकर्षण के अत्यधिक निकट है, अतः परिणाम स्वरूप हिंदू धर्म में ईश्वर के मातृ रूप तथा पितृ रूप के मध्य एक संवेदनात्मक एकस्वरता विकसित हो गयी। लोगों ने सीता राम अथवा राधा कृष्ण की साथ-साथ पूजा की।

मानव मन की धारणा सम्बंधित अनुभवों पर आधारित है। विषयपरक आदर्शवाद ने इसी कारण अपनी प्रारंभिक अवस्था में विषयाश्रित तथा वैयक्तिक समरूपता का सहारा लिया। भगवान् निर्गुण तथा सगुण धारणाओं में सीमित नहीं है। लेकिन एक जटिल रिक्तता की धारणा की अपेक्षा दयालु पितृसत्ता अथवा आकर्षक, कृपालु मातृसत्ता के रूप में ईश्वर के साथ एक सचेतन सम्बंध स्थापित करना अधिक सरल है। वास्तव में भगवान् गुणों से रहित है, लेकिन सम्बंध अच्छाई तथा सद्‌गुणों के सकारात्मक आदर्शों का सकारात्मक अध्यारोपण जिज्ञासु के आत्म चरित्र निर्माण तथा आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य है।

माँ अपने बच्चे के प्रति अत्यंत दयालु होती है। आप किसी भी अन्य की अपेक्षा अपनी माँ से अधिक उन्मुक्त होते हैं। यह माँ है जो आपकी रक्षा करती है, आपका पोषण करती है, आपको सांत्वना देती है, आपको प्रसन्न करती है और आपकी देखभाल करती है। वह आपकी प्रथम गुरु है। वह अपने बच्चों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधक का देवी माँ के साथ अन्तरंग सम्बंध है।

जगन्माता की पूजा अथवा उपासना से आत्मज्ञान प्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है। कठोपनिषद् में यक्ष प्रश्न इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। माँ के पास खुले हृदय से जाएँ। अपना मन उन्मुक्त और विनम्र रखें। अपने विचार शुद्ध एवं उत्कृष्ट रखें। एक बच्चे के समान सरल रहे अपने अस्तित्व, अहंकारी प्रकृति, चतुराई, चालाकी, स्वार्थता, कुटिलता, धूर्तता को चूर-चूर कर दें। बिना किसी शर्त के पूर्ण आत्म समर्पण करें। उनके मन्त्रों का पाठ करें। उनकी पूजा आस्था और अविचल भक्ति के साथ करें।

दुर्गापूजा या नवरात्रि प्रबल साधना हेतु सर्वाधिक अनुकूल अवसर है। ये नौ दिन माँ की आराधना के लिए अत्यंत श्रेष्ठ हैं। स्वयं को उनकी आराधना में लगा दें। नवरात्रि उन दुर्गुणों पर जो कि अन्याय, अत्याचार, ऐश्वर्य की वृद्धि, लालच, स्वार्थ, घृणा में अपनी अभिव्यक्ति पाते हैं तथा अन्य आसुरी शक्तियों के गृहस्थान है, जो मनुष्य के ऊपर दुःख लाते हैं, दैवी शक्तियों की विजय का प्रतीकात्मक उत्सव है।

देवी की उनके सभी रूपों में आराधना कीजिए। वे परमात्मा का सृजनात्मक रूप हैं। वे ब्रह्मांडीय ऊर्जा का प्रतीकात्मक रूप हैं। पदार्थों के सभी रूपों तथा आत्मा की स्थिर शक्ति का भौतिक अंतिम परिणाम शक्ति है। शक्ति एवं आत्मा अभिन्न हैं। ये अनिवार्य रूप से एक हैं।

पंच तत्व एवं उनका संयोग माँ का ही बाह्य प्राकट्य है। बुद्धि, विवेक, सिद्धियाँ और इच्छा उसके आंतरिक प्राकट्य हैं। मानवता उसका दृश्यमान रूप है। अतः मानवता की सेवा देवी माँ की पूजा है।

अनुभव करें कि माँ आपकी आँखों से देखती हैं, आपके कानों से सुनती हैं, आपके हाथों से कार्य करती हैं। अनुभव करें कि शरीर, मन, प्राण, बुद्धि तथा उनके सभी कार्य उसके प्राकट्य हैं। एक ही वैश्विक जीवन सभी के हृदयों में स्पन्दित होता है। जब आप किसी से घृणा करते हैं, तो ऐसा करके आप स्वयं अपनी आत्मा को नकारते हैं, तो फिर हमारे जीवन में घृणा और स्वार्थता के लिए स्थान ही कहाँ है? अपने हृदय में इस दैवी चेतना के साथ गहरे डूब जायें। इस दैवी ऐक्य के आदर्श का सदा ध्यान करें और अभ्यास करें।

माँ की कृपा असीम है। उनकी दया अनंत है। उनका ज्ञान अनंत है। उनकी शक्ति अपरंपार है। उनकी महिमा अवर्णनीय है। उनका वैभव अपार है। वे आपको भक्ति और मुक्ति भी प्रदान करेंगी। वे हृदय की थोड़ी सी शुद्धि से प्रसन्न हो जाती हैं। पावन दुर्गापूजा देवी से प्रार्थना का पवित्र अवसर है। इस सुंदर अवसर को हाथ से न जाने दें। माँ की कृपा प्राप्त करने हेतु सच्चा और निश्चित प्रयास करें। वे आपका संपूर्ण जीवन | बदल देंगी और आपको दैवी ज्ञान, आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और कैवल्य का दुग्ध प्रदान करेंगी।

देवी माँ की पूजा

देवी उस दैवी शक्ति का समानार्थक शब्द है, जो कि विश्व को अस्तित्व के एकीकृत बल के रूप में प्रगट करती है, उसका पोषण करती है, उसका रूपांतरण करती है। वास्तव में देवी पूजा कोई एक सम्प्रदाय से सम्बंधित नहीं है और न ही यह किसी एक मत से जुड़ी हुई है। देवी अथवा शक्ति से हमारा अर्थ है, सभी अस्तित्वमान शक्तियाँ जैसे ज्ञान की सर्वज्ञता की शक्ति। ये शक्तियाँ ईश्वर के कल्याणमय रूप हैं। आप उन्हें विष्णु, शिव या जो चाहें पुकार सकते हैं। अन्य शब्दों में शक्ति स्वयं ईश्वर हैं, जो अनेक देवताओं के रूप में प्रगट होते हैं तथा जो विश्व का कारण हैं। जगत के कारण शक्ति और शाक्त एक हैं। शक्ति और शक्ति को धारण करने वाले को पृथक नहीं किया जा सकता। ईश्वर और शक्ति अग्नि और अग्नि की उष्णता के समान हैं।

इसलिए देवी पूजा और शक्ति पूजा ईश्वर की महिमा, ईश्वर की महानता, ईश्वर की सर्वोच्चता की पूजा है। यह परमात्मा की पूजा है। यह बड़ा ही दुर्भाग्य है कि देवी को रक्त की प्यासी हिंदू देवी समझ लिया गया है। नहीं, नहीं, देवी मात्र हिंदुओं की सम्पत्ति नहीं है। देवी किसी एक धर्म से सम्बद्ध नहीं है। देवी देव की चैतन्य शक्ति है। इसे कभी नहीं भूलना चाहिए। देवी शक्ति आदि नाम तथा उन विभिन्न रूपों के विचार जो उन रूपों से सम्बद्ध हैं वे मानव ज्ञान की सीमितता तथा मानव की समझ के कारण दिए गये हैं। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं कि यह मेरी निम्न प्रकृति शक्ति है, इसके परे मेरी उच्च प्रकृति, वास्तविक शक्ति है जो जीवन का मूल है तथा जो इस संपूर्ण विश्व को बनाए रखती है। उपनिषद् कहती है कि पराशक्ति जो ईश्वर की परम शक्ति है उसे विभिन्न प्रकार से सुना जा रहा है। यह प्रकृति की शक्ति, ज्ञान शक्ति तथा क्रिया के रूप में प्रकट हुई हैं। सत्य कहता हूँ कि विश्व के सभी प्राणी देवी के पूजक हैं। यहाँ ऐसा कोई भी नहीं है जो किसी न किसी रूप में शक्ति की लालसा नहीं रखता। भौतिकीविद् तथा वैज्ञानिकों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक वस्तु शुद्ध अविनाशी ऊर्जा है। यह ऊर्जा उस दैवी शक्ति का एक रूप मात्र है, जो अस्तित्व के प्रत्येक रूप में उपस्थित है।

चूँकि शक्ति की आराधना इसकी अनिवार्य प्रकृति में नहीं की जा सकती, इस कारण इसकी आराधना इसके प्रकट रूपों, काल्पनिक रूपों जैसे सृजन, संरक्षण तथा विनाश की भाँति की जाती है।

शक्ति उपरोक्त तीनों कार्यों के संबंध में सरस्वती, लक्ष्मी तथा काली है। यह जैसा प्रत्यक्ष स्वरूप में प्रतीत होता है, ये अलग-अलग तीन देवियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही निराकार देवी के तीन विभिन्न रूप हैं। दुर्गा पूजा अथवा नवरात्रि जगत की देवी की तीन प्रकार से महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के रूप में पूजा का नौ दिवसीय आराधना का उत्सव है।

सरस्वती ब्रह्म बुद्धि, ब्रह्म चेतना, ब्रह्म ज्ञान है। सरस्वती की पूजा बुद्धि शुद्धि, विवेक, विचार शक्ति, ज्ञान तथा आत्मज्ञान हेतु आवश्यक है। लक्ष्मी का अर्थ मात्र भौतिक सम्पत्ति जैसे स्वर्ण, पशु आदि नहीं है। सभी प्रकार की समृद्धि, यश, वैभव, खुशी, प्रतिष्ठा, महानता देवी लक्ष्मी की कृपा के अन्तर्गत आते हैं। श्री अप्पय्य दीक्षितार तो यहाँ तक कि अंतिम मोक्ष को भी मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी कहते हैं।

इसलिए लक्ष्मी की आराधना का अर्थ है उस देवी की आराधना जो अनेकता को एकता में विलीन कर दे। इसलिए देवी की आराधना उनके सभी रूपों में साधना की संपूर्ण क्रियाविधि की व्याख्या है।

दुर्गापूजा अथवा नवरात्रि में कठोर अनुष्ठान कीजिए और अपनी आंतरिक प्रकृति को शुद्ध कीजिए।

यह माँ की आराधना के लिए वर्ष में सर्वाधिक शुभ समय है। सप्तशती (देवी माहात्म्य) अथवा ललिता सहस्रनाम का पाठ कीजिए। देवी के मन्त्र का जप कीजिए। पारंपरिक पूजा को सच्चे मन तथा पूर्ण भक्ति के साथ कीजिए। देवी माँ के दर्शन के लिए रुदन कीजिए। देवी माँ आपको ज्ञान, शांति तथा आनंद का वह आशीर्वाद प्रदान करेंगी जिसकी कोई सीमा नहीं होगी। देवी माँ दुर्गा संसार में धर्म की स्थापना करें, वे सभी विरोधी बलों का नाश करें जो कि संसार की शांति में बाधा डालते हैं। वे पृथ्वी से सभी प्रकार की बीमारियों एवं दुर्भिक्ष का उन्मूलन करें। वे इस जगत के अपने सभी बच्चों के लिए परम शांति, समृद्धि तथा अक्षय आनंद लायें वे सभी असुरों अथवा दुष्ट प्रकृति वाले जनों को सात्विक जनों में बदल दें। वे वासना, क्रोध, अहंकार, पाखंड आदि आसुरी वृत्तियों (मधु, कैटभ, महिष, शुंभ, निशुंभ जिनका प्रतीक हैं) का मानवों में से उन्मूलन करें।

वे अपने बच्चों को देवी ज्ञान का दुग्ध प्रदान करें तथा उन्हें देवी वैभव और यश, कैवल्य की अविनाशी अवस्था और अनंत सूर्य के प्रकाश की विशालतम ऊँचाइयों तक उठायें।

मातृ-वन्दना

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा पूजिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

माता मरकतश्यामा मातङ्गी मदशालिनी ।
कटाक्षयतु कल्याणी कदम्बवनवासिनी ।।
जय मातङ्गतनये जय नीलोत्पलद्युते ।
जय सङ्गीतरसिके जय लीलाशुकप्रिये ।।

जप हेतु देवी- मन्त्र

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

ॐ श्री दुर्गायै नमः ।।

ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः ॥

ॐ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

ॐ दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये ।।

ॐ नीलां देवीं शरणमहं प्रपद्ये ।।

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच-

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनि ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ।।

देव्युवाच-

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ।।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकी दुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।१ ।।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥२॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।४।।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥६॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥७॥

।। इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ॥

ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

विनियोगः

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, श्री आदिशक्तिर्देवता द्वितीयाया जगती, शिष्टानां च त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीदेवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शंखं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गदहारकंकणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।।

देवीसूक्तम्

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषो प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्राभूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई ऋणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ।।४।।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामयते तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ।।८।।

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ।

ॐ तत् सत् ॐ

अथ देव्याः कवचम्

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१ ॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२ ॥

प्रथमं शैलपुत्रीति द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥

पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनी तथा ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ।।४।।

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥५॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्यगता रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥६॥

न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
आपदं न च पश्यन्ति शोकदुःखभयंकरीम् ॥७॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नित्यं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसि तान्न संशयः ।।८।।

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ।।९ ।।

नारसिंही महावीर्या शिवदूती महाबला ।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।।१०।।

लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ।
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।।११।।

ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ।
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।।१२ ।।

नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ।
श्रेष्ठैश्च मौक्तिकैः सर्वा दिव्यहारप्रलम्बिभिः ।। १३ ।।

इन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागैः सुशोभनैः ।
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।।१४।।

शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ।
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।। १५ ।।

कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ।
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।। १६ ।।

धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै।
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।।१७।।

महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनी ।।१८।।

प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ।
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।।१९ ।।

प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्वायव्यां मृगवाहिनी ।
उदीच्यां पातु कौबेरी ऐशान्यां शूलधारिणी ॥२०॥

ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ।
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।।२१ ।।

जया मामग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ।
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।।२२।।

शिखां मे द्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ।
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद्यशस्विनी ॥२३॥

नेत्रयोश्चित्रनेत्रा च यमघण्टा तु पार्श्वके ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन भ्रुवोर्मध्ये च चण्डिका ||२४||

शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शंकरी ।।२५ ।।

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृताबाला जिह्वायां च सरस्वती ॥२६ ॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२७ ।।

कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२८॥

निलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२९॥

हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेन्नरेश्वरी ।।३० ।।

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ।।३१ ।।

नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
मेढ्रं रक्षतु दुर्गन्धा पायुं मे गुह्यवाहिनी ।।३२ ।।

कट्यां भगवती रक्षेदूरू मे मेघवाहना ।
जङ्घे महाबला रक्षेत् जानू माधवनायिका ।।३३ ।।

गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु कौशिकी
पादाङ्गुलीः श्रीधरी च तलं पातालवासिनी ।। ३४ ।।

नखान् दंष्ट्रकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौमारी त्वचं योगिश्वरी तथा ।।३५ ।।

रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३६॥

पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३७ ।।

शुक्रं ब्रह्माणी मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ।। ३८ ।।

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत् प्राणान् कल्याणशोभना ॥३९॥

रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥४० ॥

आयू रक्षतु वाराही धर्म रक्षतु पार्वती
यशः कीर्ति च लक्ष्मीं च सदा रक्षतु वैष्णवी ।। ४१ ।।

गोत्रमिन्द्राणी मे रक्षेत् पशून् रक्षेच्च चण्डिका ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ।। ४२ ।।

धनेश्वरी धनं रक्षेत् कौमारी कन्यकां तथा ।
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्ग क्षेमंकरी तथा ।।४३ ।।

राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सततं स्थिता ।
रक्षाहीनं तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।। ४४ ।।

तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वरक्षाकरं पुण्यं कवचं सर्वदा जपेत् ।। ४५ ।।

इदं रहस्यं विप्रर्षे भक्त्या तव मयोदितम् ।
पदमेकं न गच्छेतु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।। ४६ ।।

कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ।
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकालिकः ।।४७ ॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ ४८ ॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥४९॥

इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥५०॥

दैवीकला भवेत्तस्य त्रैलोक्ये चापराजितः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ।। ५१ ।।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चैव यद्विषम् ॥५२॥

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चौपदेशिकाः॥५३॥

सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महारवाः ॥५४॥

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५५॥

नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचेनावृतो हि यः ।
मानोन्नतिर्भवेद्राज्ञस्तेजोवृद्धिः परा भवेत् ॥५६ ।।

यशोवृद्धिर्भवेत् पुंसां कीर्तिर्वृद्धिश्च जायते ।
तस्मात् जपेत् सदा भक्तः कवचं कामदं मुने ॥५७ ।।

जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।
निर्विघ्नेन भवेत् सिद्धिश्चण्डीजपसमुद्भवा ।।५८ ।।

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ।।५९ ।।

देहान्ते परमं स्थानं सुरैरपि सुदुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥६०॥

तत्र गच्छति गत्वासौ पुनश्चागमनं नहि ।
लभते परमं स्थानं शिवेन समतां व्रजेत् ।।६१।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिहरब्रह्मविरचितं देवीकवचं समाप्तम् ।

अथ अर्गलास्तोत्रम्

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतापहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥१ ॥

जयन्ती 'मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥२॥

मधुकैटभविध्वंसि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥३॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥४ ॥

धूम्रनेत्रवधे देवि धर्मकामार्थदायिनी ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।। ५।।

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥६॥

निशुम्भशुम्भनिर्नाशि त्रैलोक्यशुभदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥७ ॥

वन्दितांघ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥८ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।९ ।।

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चापर्णे दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१०।।

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।११।।

चण्डिके सततं युद्धे जयन्ती पापनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१२ ।।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि देवि परं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।। १३ ।।

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि विपुलां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।। १४ ।।

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१५।।

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।। १६ ।।

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तञ्च मां कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१७।।

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पनिषूदिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१८ ।।

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।१९।।

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ||२०||

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।२१ ।।

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।। २२ ।।

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।२३ ।।

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।। २४ ।।

भार्यां मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।२५ ।।

तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्याचलोद्भवे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥२६ ।।

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
सप्तशतीं समाराध्य वरमाप्नोति दुर्लभम्।।२७ ॥

।।इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अर्गलास्तोत्रं समाप्तम्।।

अथ कीलकस्तोत्रम्

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वतीदेवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ।।१।।

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जप्यतत्परः ॥२॥

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि कर्माणि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवीं स्तोत्रवृन्देन भक्तितः ॥३॥

न मन्त्रो नौषधं तस्य न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जप्येन सिद्ध्येत्तु सर्वमुच्चाटनादिकम् ||४ ॥

समग्राण्यपि सेत्स्यन्ति लोकशंकामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ।। ५।।

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुह्यं चकार सः ।
समाप्नोति स पुण्येन तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥८ ॥

यो निष्कीलां विधायैनां चण्डीं जपति नित्यशः ।
स सिद्धः स गणः सोऽथ गन्धर्वो जायते ध्रुवम् ।।९ ।।
न चैवापाटवं तस्य भयं क्वापि न जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृते च मोक्षमाप्नुयात् ।।१० ।।

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पूर्णमिदं प्रारभ्यते बुधैः ।। ११ ।।

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जप्यमिदं शुभम् ।।१२ ।।

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ।। १३ ।।

ऐश्वर्यं तत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यमेव च ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ।। १४ ।।

चण्डिकां हृदयेनापि यः स्मरेत् सततं नरः ।
हृद्यं काममवाप्नोति हृदि देवी सदा वसेत् ।। १५ ।।

अग्रतोऽमुं महादेवकृतं कीलकवारणम् ।
निष्कीलञ्च तथा कृत्वा पठितव्यं समाहितैः ।। १६ ।।

इति श्रीभगवत्याः कीलकस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

विनियोगः

रात्रिसूक्तस्य कुशिक ऋषिः रात्रिर्देवता, गायत्री छन्दः, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशती पाठादौ जपे विनियोगः ।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ।।१।।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते. तमः ॥३॥

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वयः ||४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ।। ५।।

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥६॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उप ऋणेव यातय ॥७ ॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८ ॥

इति ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् समाप्तम् ।

देवी माहात्म्य

।। ॐ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्री दुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीप्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः ।

महाकालीध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।।

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ ऐं मार्कण्डेय उवाच ॥ १ ॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ||४ ॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ||५ ॥

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥६॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥८ ॥

ततो मृगयाव्याजेन हतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ।।९ ।।

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ||१० ॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ।।११ ॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः
मत्पूर्वः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ।।।१२ ।।

मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ।।।१३।।

मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ।।। १४ ।।

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।।। १५ ।।

संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः । ।।१६ ।।

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।।।१७।।
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ।।। १८ ।।

प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ।।१९ ।।

वैश्य उवाच ।। २० ।।

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।।२१ ।।

विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ।
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ॥२२॥

सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ।
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ॥२३॥

किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्||२४||
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ।। २५ ।।

राजोवाच ।। २६ ।।
यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः||२७||

तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८ ॥

वैश्य उवाच ।। २९ ।।

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ।
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः॥३०॥

यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः॥३१ ॥

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ।
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ॥३२॥

तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥३३॥

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्||३४||

मार्कण्डेय उवाच ।। ३५ ।।

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ||३६||

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ||३७||

कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ।
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ||३८ ||

राजोवाच ।। ३९ ।।

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।। ४० ।।

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।। ४१ ।।

ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।।४२ ।।

अयं च निकृतः पुत्रैदरिभृत्यैस्तथोज्झितः ।
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।। ४३ ।।

एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।।४४ ॥

तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ।।४५ ।।

ऋषिरुवाच ।।४६ ।।

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ।
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ।। ४७ ।।

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।।४८ ।।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।। ४९ ।।

ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ।
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।।५० ।।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचक्षुषु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।।५१ ।।

मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ।।५२ ।।

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥५३ ॥

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत् ॥७४ ॥

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥७५ ॥

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥७६॥

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।।७७ ॥

संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥७८ ।।

राजोवाच ।। ७९ ।।

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ॥८०॥

यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ।।८१।।

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥८२॥

ऋषिरुवाच ।। ८३ ।।

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ||८४||

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ||८५ ॥

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥८६॥

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ॥ ६७ ॥

तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥६८॥

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।।६९ ।।

तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ।
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥ ७०॥

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ।।७१ ।।

ब्रह्मोवाच ।। ७२ ।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥७३॥

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवजननी परा ।।७४ ।।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृजते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।।७५ ।।

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥७६॥

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥७७॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।।७८ ।।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।। ७९ ।।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ||८०||

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।।८१ ।।

यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥८२॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ||८३ ॥

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ ८४ ॥

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥८५ ।।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।।८६ ।।

बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥८७॥

ऋषिरुवाच ।।८८ ।।

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।।।८९ ।।

नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।९०।।

उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ।
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।।९१।।

मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।।९२ ।।

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥९३॥

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ।। ९४ ।।

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो क्रियतामिति केशवम् ।।९५ ।।

श्रीभगवानुवाच ।। ९६ ।।

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ।। ९७ ।।

किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ।।९८ ।।

ऋषिरुवाच ।। ९९ ।।

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ।
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।। १०० ।।

प्रीती स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ।। १०२ ॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता ।
चक्रेण वै च्छित्रे जघने शिरसी तयोः कृत्वा ।।१०३ ।।

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ।। १०४ ।।

।। ऐं ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।

दुर्गा सप्तशती अथवा देवी माहात्म्य

(देवी की महिमा)

प्रथम अध्याय

मार्कण्डेय ऋषि बोले : अष्टम मनु सूर्य के पुत्र थे और उनका नाम श्रावणी था। मैं अब आपको उनका जन्म किस प्रकार हुआ, वह कथा सुनाता हूँ। महामाया के अनुग्रह से सूर्य के पुत्र मन्वंतर के स्वामी सूर्य के पुत्र हुए। पूर्व काल की बात है; सुरथ नामक एक राजा थे जो पृथ्वी पर राज्य करते थे। एक बार उनके राज्य पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया और राजा का उनके साथ घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें राजा की पराजय हुई। राजा को बड़ा ही दुःख हुआ और वे एक घोड़े पर सवार हो कर देश छोड़ कर अकेले एक घने जंगल में चले गए। वहाँ उन्होंने एक महान ऋषि का आश्रम देखा, वहाँ मुनि के अनेक शिष्य थे, जो वहाँ रहकर शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। ऋषि ने बड़े ही उत्साह से राजा का स्वागत किया।

राजा इधर-उधर विचरण करते हुए कुछ काल तक वहाँ रहे। एक दिन वे मोह के वशीभूत हो कर स्वयं ही विचार करने लगे-यह कितना दुःख का समय है, कि मैं जिस देश पर शासन करता था, आज उस पर शत्रुओं का शासन है। मेरे मन्त्री जो मेरी ईमानदारी से रक्षा करते थे, वे ही आज शत्रुओं की सेवा कर रहे हैं। मेरी प्रजा जो मेरे शासन में अत्यंत प्रसन्न थी, अब मुझे पता नहीं कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो रहा है। वे सभी एक विदेशी राजा की सेवा कर रहे हैं। शत्रुओं द्वारा मेरा सारा खजाना समाप्त कर दिया जाएगा। ऐसी ही अन्य कई बातें राजा नित्य ही विचार करते रहते थे।

आश्रम में राजा ने एक वैश्य को देखा। राजा ने उससे पूछा, “तुम कौन हो ? तुम यहाँ क्या कर रहे हो? कृपा करके मुझे अपने बारे में सब कुछ बताओ।" वैश्य ने उत्तर दिया, “मेरा नाम समाधि है। मेरा जन्म एक धनी कुल में हुआ है। लेकिन मेरे दुष्ट पड़ोसियों ने मेरी संपूर्ण सम्पत्ति छीन ली और मेरे परिवार तथा पत्नी और बच्चों ने मुझे घर से बाहर कर दिया है। निर्धनता के कारण मैंने वन में शरण ली है। मैं दुःख से परिपूर्ण हूँ। अब मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मेरी स्त्री को क्या हुआ और मेरे बच्चे क्या कर रहे हैं? वे जीवित हैं अथवा मृत्यु को प्राप्त हो गए, मैं तो यह भी नहीं जानता । राजा ने कहा जब तुम्हारे निर्धन हो जाने पर तुम्हारी स्त्री तथा पुत्रों ने तुम्हें घर से बाहर निकाल दिया, तो भी तुम्हारे मन में उनके प्रति इतना मोह क्यों है? वैश्य ने कहा कि आप जो कह

रहे हैं, वह सर्वत्र सत्य है। मैं भी यह जानता हूँ। लेकिन क्या कहूँ ? मैं अब भी उनसे प्रेम करता हूँ। मन की प्रकृति ही ऐसी है। मैं अब भी उस दुष्ट पत्नी तथा बच्चों से प्रेम करता हूँ जिन्होंने मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं इस विषय में कुछ भी कर सकने में असमर्थ हूँ।

मार्कंडेय ऋषि ने कहा : इसके पश्चात वे दोनों आश्रम में निवास करने वाले ऋषि के पास गये। उन दोनों ने ऋषि को प्रणाम किया और बड़े ही आदरपूर्वक राजा ने ऋषि से प्रश्न किया, "ऋषिवर, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ; मैं अपना राज्य खो बैठा हूँ। मेरे पास अब कुछ भी शेष नहीं है। लेकिन अब भी मुझे अपने खोये हुए राज्य, अपनी स्त्री और बच्चों के प्रति बड़ा ही मोह है। ऐसा क्यों है ? यह एक वैश्य है। इसे इसके सम्बंधियों ने निर्धनता के कारण घर से बाहर निकाल दिया है, लेकिन फिर भी इसे अपनी स्त्री और बच्चों से बड़ा ही मोह है। हम दोनों ही दुःख से परिपूर्ण हैं। हम दोनों ही भ्रमित हैं। कृपा करके अपने ज्ञान द्वारा हमारी अज्ञानता को दूर करें।"

ऋषि ने कहा : हे राजन! विषय मार्ग का ज्ञान प्रत्येक जीव को होता है। सभी के पास समान ही ज्ञान होता है। लेकिन कुछ प्राणी रात्रि में नहीं देख पाते और कुछ दिन में नहीं देख पाते। कुछ जीव ऐसे हैं जो दिन तथा रात में बराबर देखते हैं। मनुष्य मात्र दिन में ही देख सकता है। यह सब क्या है ? यह अन्तर क्यों है ? अग्नि पर गिर रहे पतंगों की ओर देखो! इंद्रिय विषयों की अग्नि में गिरते हुए मनुष्यों की ओर देखो! प्राणियों में यह अन्तर क्यों है ? बुद्धि सम्पन्न होने के बाद भी सभी प्राणी पेट के लिए संघर्ष कर रहे हैं। महाशक्ति विष्णु की महामाया के द्वारा सभी नियंत्रित और मोहित हैं। उनकी शक्ति के कारण यह संपूर्ण जगत कार्य कर रहा है। उनके कारण ही सभी कष्ट पा रहे हैं। उन्हीं के कारण सभी प्रसन्न हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यहाँ तक कि ज्ञानी भी इस माया के कारण बलपूर्वक खींचे जाते हैं और पूर्ण मोहित हो जाते हैं। वे ही इस चर-अचर जगत की सृजक हैं। वे प्रसन्न होने पर अन्त में मोक्ष प्रदान करती हैं। वे ही बंधन तथा मोक्ष का कारण हैं। वे अकेली ही सब-कुछ हैं। वे देवताओं पर शासन करती हैं!

राजा ने कहा ऋषिवर, वे देवी माया कौन है? उनका आविर्भाव कैसे हुआ? मैं उनके बारे में सब कुछ जानना चाहता हूँ, जो इस जगत में ऐसे अद्भुत कार्य करती हैं।

ऋषि ने कहा : वे नित्यस्वरूपा हैं। संपूर्ण जगत उन्हीं का रूप है। उन्होंने समस्त विश्व को व्याप्त किया है। तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकार से होता है। जब वे देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए प्रकट होती हैं तो वे लोक में उत्पन्न हुई कहलाती हैं। देवी का जब प्रथम बार प्रादुर्भाव हुआ, उसकी कहानी इस प्रकार है। महाप्रलय के समय जब महाविष्णु योगनिद्रा में लीन थे, उस समय उनके कानों के मैल से दो भयंकर असुरों मधु और कैटभ का जन्म हुआ। वे दोनों भगवान् के नाभि

कमल में विराजमान ब्रह्मा जी, जिनका उसी समय प्राकट्य हुआ था, का वध करने के लिए तैयार हो गए। उन असुरों को अपने समीप देख तथा भगवान् विष्णु को योगनिद्रा में विलीन देख कर ब्रह्मा जी ने विश्व की आधार, जगत की परम देवी, प्रत्येक वस्तु की सृजक, संरक्षक और संहारक आदि माया का स्तवन प्रारंभ किया। ब्रह्मा जी ने कहा, "देवी तुम स्वाहा, स्वधा और वषटकार हो। तुम नाद और अर्ध मात्रा हो, सावित्री तुम इस जगत का आधार हो। तुम ही एकमात्र इस विश्व की सृष्टि करने वाली हो। तुम्हीं ने इसे व्याप्त किया है। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहा हो। आप महाविष्णु को जगा कर मेरी रक्षा करें। आप ही तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली सबकी प्रकृति हैं। आप ही समृद्धि हैं। आप ही शांति और करुणा हैं। आप असंख्य शस्त्र धारिणी हैं, आप सुंदरी और भयंकर हैं। आप महान से भी अधिक महानतम हैं। हे देवि, जो भी यहाँ है वह सब आपका ही है। अब और अधिक मैं क्या कह सकता हहूँ विष्णु भगवान् मेरी सहायता कर सकते हैं। वे मेरी रक्षा कर सकते हैं। कृपा करके उन्हें जगा दीजिए और इन असुरों को मोहित कर दीजिए, मेरा जीवन संकट में है।"

ऋषि ने कहा : इस प्रकार स्तुति करने पर देवी प्रसन्न हो गयीं और महामाया ने सभी ओर से विष्णु भगवान् के शरीर में प्रवेश किया। देवी ने उनके नेत्रों को खोला, उनके मन को खोला, उनके हाथों को खोला और प्रत्येक अंग को खोला। जगत के स्वामी महाविष्णु जो अवर्णनीय सौंदर्य के स्वामी थे, वे शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों के साथ उठ बैठे। उन्होंने अपने समक्ष दो भयंकर दैत्यों को देखा। वे क्रोधपूर्वक ब्रह्मा जी को खा जाने का उद्योग कर रहे थे। भगवान् हरि ने उनके साथ पाँच हजार वर्षों तक युद्ध किया। महामाया अपनी माया से उन राक्षसों को मोहित कर रही थीं। अपनी अज्ञानता में उन दोनों ने भगवान् विष्णु से कहा, "हरि तुम हमसे कोई भी वरदान माँगो।" भगवान् ने कहा, "तुम दोनों तत्काल मेरे हाथों से मारे जाओ।"

ऋषि कहते हैं कि उन दोनों असुरों ने देखा कि यहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ जल न हो, तो वे दोनों बोले कि 'तुम हमें ऐसे स्थान पर मार सकते हो जहाँ ज न हो।' विष्णु भगवान् ने उन दोनों के सिरों को अपनी जाँघों पर रखा जहाँ जल नहीं थ और अपने भयंकर सुदर्शन चक्र से काट डाला। यह कहानी थी कि माया का प्रथम ब कैसे आविर्भाव हुआ। अब उनकी अन्य कथाऐं सुनो।

अथ मध्यमचरितम्

द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीमध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, महालक्ष्मीर्देवता, उष्णिक् छन्द शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थे मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

महालक्ष्मीध्यानम्

ॐ अक्षस्रकपरशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ।।

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥२ ॥

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥३॥

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ||४ ॥

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ।। ५।।

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां 'यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥६॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना॥७ ॥

एददव्ः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥८ ॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननी ।।९ ।।

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ।। १० ।।

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत।।११ ।।

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।।१२ ।।

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१३॥

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ।।१५।।

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्यो ऽर्कतेजसा ।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ।।१६ ।।

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥१७॥

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ||१८||

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः॥२०॥

शंखं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ।।२१ ॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्।। २२ ।।

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ||२३ ।।

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥२४॥

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणि तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ।।२५।।

अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६ ।।

अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ।।२८ ||

अददज्जलधिस्तस्यै पंकजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ।।२९ ।।

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ||३० ।।

नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ।। ३१ ।।

सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ।।३२ ।।

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे॥३३॥

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ।। ३५ ।।

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ।।३६ ।।

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥३८॥

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ।।३९ ।।

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः||४०||

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः।।४१ ।।

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ।।४२ ।।

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ।।४३ ।।

वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ।।४४।।

युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः।।४५ ।।

युयुधुः संयुगे देवाय सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रेस्तु रथानां दन्तिनां तथा ।।४६॥

हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे।।४८ ।।

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।।४९ ।।

लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ।।५० ॥

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ।।५१ ॥

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ||५२॥

स एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः॥५३॥

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शंखांस्तथापरे ॥५४॥

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥

खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥

असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे॥५७॥

विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः॥५८ ॥

केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९ ॥

श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ।।६० ॥

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ।।६१ ॥

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः।।६२ ॥

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ||६४ ॥

पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः।।६५ ।।

शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ।।६८ ॥

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ।। ६९ ।।

।। ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

मध्यम चरितम्

द्वितीय अध्याय

ऋषि कहते हैं : पूर्वकाल में देवताओं तथा असुरों में पूरे सौ वर्षों तक घोर संग्राम हुआ। असुरों का नायक महिषासुर था और देवताओं के नायक इंद्र थे। शक्तिशाली राक्षसों से देवता गण पराजित हो गये तथा महिषासुर स्वर्ग का राजा बन गया। पराजित देवता गण ब्रहमा जी के पास गए। ब्रहमा जी के साथ सभी देवता गण विष्णु भगवान् और शिव जी के पास गए तथा उन्हें सारी बातें कह सुनाईं। उन्होंने कहा– "भगवन्! महिषासुर सूर्य, अग्नि, इंद्र, वायु, चंद्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओं का अधिकार छीन कर स्वयं सबका अधिष्ठाता बन बैठा है। उसने समस्त देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है। अब सभी देवता गण मनुष्यों की भाँति पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं। हम आपके पास सहायता हेतु आए हैं। कृपा करके उसके वध का कोई उपाय सोचिए। हम आपकी शरण में आए हैं।"

इस प्रकार देवताओं की बातें सुन कर भगवान् विष्णु और शिव जी को बड़ा ही क्रोध आया। भगवान् विष्णु के मस्तक से एक महान तेज प्रगट हुआ। शिव जी के तीसरे नेत्र से भी तेज प्रगट हुआ तथा अन्य सभी देवता गणों के मस्तक से भी बड़ा भारी तेज प्रगट हुआ। यह सम्पूर्ण तेज मिलकर एक हो गया। महान तेज का वह पुंज जाज्वल्यमान पर्वत के समान प्रतीत हुआ। इस प्रकाश से जो कि देवताओं के शरीर से प्रगट हुआ था समस्त लोक प्रकाशमान हो गए। इस प्रकाश ने एक स्त्री का रूप ले लिया। भगवान् शिव के तेज से देवी के मुख का निर्माण हुआ । यम की शक्ति से उनके केशों का निर्माण हुआ। भगवान् विष्णु की शक्ति से उनके हाथों का निर्माण हुआ। ब्रहमा की शक्ति से उनके पैरों का निर्माण हुआ। इस प्रकार अन्य देवताओं के द्वारा उनके किसी न किसी अंग का निर्माण हुआ। वह सभी देवताओं का सार तत्व थी। सभी देवता गण उसे देख कर बड़े ही प्रसन्न थे।

सभी देवता गणों ने उसे असुरों से युद्ध के लिए अपने-अपने अस्त्र प्रदान किये। शिव जी ने उसे अपना त्रिशूल प्रदान किया, भगवान् विष्णु ने उसे अपना सुदर्शन चक्र प्रदान किया। वरुण ने उसे अपना शंख प्रदान किया, अग्नि ने उसे अपनी शक्ति प्रदान की, वायु ने उसे धनुष-बाण प्रदान किया, इंद्र ने उसे वज्र, घंटा तथा एरावत प्रदान किया, ब्रहमा जी ने उसे अपना कमंडलु प्रदान किया, यम ने उसे अपनी तलवार प्रदान की, विभिन्न देवताओं ने उसे अपनी मालाएं, बहुमूल्य आभूषण, कर अंगूठियों, आयुध, खड्ग, कमल, शेर, मणियाँ, जवाहरात आदि प्रदान किए। इसी प्रकार अन्य

देवताओं ने भी देवी को अस्त्र-शस्त्र प्रदान कर देवी का आदर किय तत्पश्चात देवी ने अट्टहास करके उच्च स्वर से गर्जना की, जिससे सपूर्ण आकाश और पृथ्वी गुंजायमान हो उठे और कम्पन करने लगे। उसकी प्रतिध्वनि से लोकों में हलचल मच गई और समुद्र दोलायमान हो उठे। स्वर्ग और नर्क हिलने लगे । देवताओं ने कहा, "हे शक्तिशाली सिंहवाहिनी, तुम्हारी जय हो ।" सभी ऋषि गण देवी का स्तवन किया।

असुरों ने देखा कि एक भयंकर देवी उनकी ओर आ रही है, किंतु वे यह नहीं जान पा रहे थे कि वह कौन है। उन्होंने तत्काल अपनी सेना एकत्र की और देवी के विरोध में खड़े हो गए। महिषासुर ने भयभीत हो कर कहा कि यह क्या है? और अपने सेना सहित देवी पर आक्रमण कर दिया। देवी ने तीनों लोकों को आवृत्त किया हुआ था। देवी के धनुष और बाण इतनी भयंकर आवाज करते थे कि समस्त आसुरी सेना भयभीत हो कर अपना बल खो बैठी। देवी के सहस्रों हाथ थे जिनमें असंख्य अस्त्र थे। इसके बाद देवी और असुरों के मध्य भयंकर संग्राम प्रारंभ हो गया। प्रारंभ में आसुरी सेना के सेनानायक चिक्षुर और चामर ने हजारों रथियों के साथ युद्ध करना प्रारंभ किया। तत्पश्चात एक अन्य शक्तिशाली राक्षस उदग्र अपने मित्र असिलोमा तथा करोड़ों योद्धाओं के साथ देवी से युद्ध करने के लिए आया और उसने देवी को चारों ओर से घेर लिया। बक्षल हजारों हाथियों और घोड़ों की सेना के साथ आया। विडाल असुर पंद्रह सौ आयुधों के साथ देवी का नाश करने के लिए आया। महिषासुर के द्वारा लाए गए रथों, घोड़ों तथा पैदल योद्धाओं की संख्या की तो कोई गिनती ही न थी। वे । इतने अधिक थे कि सारा संसार उनको सँभाल पाने हेतु पर्याप्त न था। लेकिन देवी अपने शेर के साथ अकेली युद्ध कर रही थी।

तत्पश्चात महिषासुर स्वयं करोड़ों हाथियों, घोड़ों, आयुधों तथा योद्धाओं के सहित देवी को समाप्त करने के लिए आया। उनमें से कुछ ने देवी के ऊपर आग्नेयास्त्र छोड़े, कुछ ने खड्ग से, कुछ ने तलवार से आक्रमण किया तथा कुछ ने देवी पर पाश छोड़े। देवी ने उन सबको खेल ही खेल में एक क्षण में ही नष्ट कर दिया। देवी ने असुरों के ऊपर दिव्यास्त्र छोड़े जिससे कि बहुत बड़ी राक्षस सेना पलक झपकते ही भूमि पर गिर गई। जिस प्रकार वन में अग्निदेव होते हैं, उसी प्रकार महिषासुर अपने सभी अस्त्र-शस्त्रों सहित देवी के शेर पर टूट पड़ा। देवी की प्रत्येक श्वास से असंख्य योद्धा बाहर आते थे और असुरों के ऊपर टूट पड़ते थे और उन्हें भूमि पर चिर निद्रा में सुला देते थे। देवी ने अपना शंख बजाया जिसकी ध्वनि से कितने ही असुरों के हृदय विदीर्ण हो गए। त्रिशूलों, चक्रों, भाले तथा अन्य दिव्यास्त्रों के द्वारा देवी ने सभी असुरों को निर्दयतापूर्वक मार कर फेंक दिया। वहाँ भूमि पर असुरों के मृत शरीरों के अनेक पहाड़ पड़े थे और इन पहाड़ों में से रक्त की नदियाँ बह रही थीं। कुछ असुर दो भागों में कट गए थे तथा कुछ के सिर फूट गए थे। कुछ असुर संज्ञाशून्य हो गए थे तथा कुछ के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। जिनको बुरी तरह मार पड़ी थी, वे रक्त वमन कर रहे थे। असुरों

के असंख्य सिर बिखरे पड़े थे, जिनमें से कुछ के नेत्र थे तथा कुछ नेत्रविहीन थे। देवी के भयंकर सिंह ने असुरों की जंघाएें चीर कर उनका जी भर कर रक्त पिया। असुरों के सेनानायक मारे गए। सभी हाथी, घोड़े और रथ टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। देवी असुरों के पर्वत के मध्य सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही थी और देवताओं ने आकाश से पुष्प वर्षा की।

तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२ ॥

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥

तस्यच्छित्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ||४ ॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ।। ५।।

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥६॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥७॥

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥८ ॥

चिक्षेप च ततस्ततु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ।।९ ।।
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।
। तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ।। १० ।।

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ।। ११ ।।

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ।।१२ ।।

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ।। १३ ।।
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ।।१४।।

युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ।।१५ ।।

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ।।१६ ।।

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ।।१७।।

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ।। १८ ।।

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ।।१९ ।।

बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥२०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्।।२१॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ।।२२ ॥

वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ।।२३॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ||२४||

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ।।२५ ॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ।।२६।।

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ।।२७।।

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्बधाय तदाकरोत् ||२८ ॥

साक्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ।।२९।।

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ||३० ।।

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः।। ३१ ।।

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ।। ३२ ।।

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। ३३ ।।

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ||३४ ।।

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ।।३५ ।।

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं महोद्भूतमुखरागाकुलाक्षरम् ।।३६ ॥

देव्युवाच ।। ३७ ।।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ।।३८ ।।

ऋषिरुवाच ।। ३९ ।।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ||४० ।।

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्तं एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ।। ४१ ।।

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः।। ४२ ।।

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्ष च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ||४३ ॥

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ||४४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

तृतीय अध्याय

महिषासुर के सेनापति ने यथासंभव देवी को सताया और देवी के सिंह को मारने का प्रयास किया। देवी इस कारण उस पर क्रोधित हो गईं और उन्होंने अपने त्रिशूल के एक ही वार से उसका सिर काट दिया और मीलों दूर फेंक दिया। यह देख कर महिष का साथी चामर अपने अत्यंत शक्तिशाली आग्नेयास्त्र के साथ आया। लेकिन देवी के मुँह से निकली एक ही हुंकार ने उस आग्नेयास्त्र को भस्मीभूत कर दिया। देवी उछल कर आकाश में चली गयी और उसके सिर को एक ही वार में धड़ से अलग कर दिया। उसके बाद उदग्र अपने हाथों में अनेक वृक्ष ले कर आया, देवी को मारने के लिए। देवी क्रोध में भर उठी और तत्क्षण ही उस दैत्य को मार डाला। कराल, बक्षल, दुर्धर, दुर्मुख, विडाल सभी महादेवी के हाथों यमलोक भेज दिए गए।

महिषासुर के सभी सहयोगी मारे जा चुके थे और उसके पास देवी के सामने आने के सिवा अन्य कोई सहारा न था। उसने एक भयंकर बैल का रूप धारण कर लिया और देवी को परेशान करने लगा। अपनी पूँछ, सींगों तथा खुरों के शक्तिशाली प्रहार के द्वारा उसने भयंकर ध्वनि उत्पन्न की जिससे कि पृथ्वी काँप उठी। वह देवी के सिंह के ऊपर एक विशाल तलवार ले कर टूट पड़ा और उसे घायल कर दिया। सिंह भयंकर रूप से दहाड़ा और क्षण भर में महिषासुर ने देखा कि उसके पैरों को शेर ने चीर डाला है। महिष की पूँछ के एक वार से समुद्र आकाश में छितर जाते थे और ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि इस संसार का अब अन्त होने ही वाला है। उसके सींगों के वार से बादलों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे और वे चारों दिशाओं में छितर जाते थे। पृथ्वी उसके खुरों से टुकड़ों में विभक्त हो गई थी और यह दृश्य अत्यंत भयावना था। जब देवी उसको मारने के लिए आई तो उसने सिंह का रूप धारण कर लिया और देवी के ऊपर टूट पड़ा। तत्क्षण ही उसने रूप बदल कर राक्षस का रूप धारण कर लिया और तलवार ले कर देवी के ऊपर टूट पड़ा। देवी ने उस के ऊपर अस्त्रों से प्रहार किया; किंतु उसने तत्क्षण हाथी का रूप धारण कर लिया और देवी के ऊपर टूट पड़ा। लेकिन देवी के सिंह ने हाथी के ऊपर आक्रमण कर दिया और तत्क्षण उस असुर ने भैंसे का रूप धारण कर लिया। उसके बाद तीनों लोकों की माता ने उसकी ओर अपनी लाल-लाल आँखों से देखा और एक बार फिर दहाड़ीं और बोली, "अरे दुष्ट असुर, तेरा अन्त अब निकट है। मैं आनंदपूर्वक तेरा रक्त पिऊँगी। आ! अब मैं देवों को प्रसन्न करूँगी।"

ऋषि कहते हैं: ऐसा कह कर देवी ने उसका गला पकड़ा और उसके पैरों को पकड़ कर दो भागों में चीर डाला। महिषासुर के मारे जाने पर असुर सेना में हाहाकार मच गया। देवताओं में बड़ा ही आनंद हुआ। देवताओं ने देवी की विजय तथा यश की प्रशंसा की। गंधर्व गाने लगे और अप्सराएें नृत्य करने लगीं।

चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः॥२॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३॥

यस्याः प्रभवमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ||४ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा ।
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ।। ५।।

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ।। ७।।

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥८ ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ।।९ ।।

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ||१० ॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ।। ११ ।।

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।

अत्यद्भुतं प्रह्हतमात्तरुपा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ।।१२ ।।

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशांक सदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ||१३||

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ।। १४ ।।

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ।।१५।।

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्ग प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ।।१६ ।।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो:
स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदु:खभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ।।१७।।

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ।।१८ ।।

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ।।१९।

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ।।२१ ।।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ।। २२ ।।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ।।२३ ।।

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ।।२४।।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ।।२५ ॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ||२६||

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ||२७ ||

ऋषिरुवाच || २८ ||

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ||२९ ||

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ||३०||

देव्युवाच || ३१ ||

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्
(ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ।) ||३२ ||

देवा ऊचुः || ३३ ||

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ||३४ ||

यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ।
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ||३५ ||

यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ||३६ ||

वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ||३७ ||

ऋषिरुवाच ।। ३८ ।।

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ।।३९ ।।

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ||४० ।।

पुनश्च गौरी देहा सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ।।४१ ।।

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ।।४२ ॥

।। ह्रीं ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

चतुर्थ अध्याय

जब असुर मारे गये तो ब्रहमा सहित सभी देव देवी के पास गए और निम्न वचनों में उनका स्तवन किया:

"उन अंबिका को जो संपूर्ण जगत की आत्मा की भाँति हैं, जो सर्वव्यापक शक्ति हैं, जो सभी का संरक्षण करती हैं तथा जो सभी ऋषियों और देवताओं के द्वारा पूजित हैं, उनको हम प्रणाम करते हैं। वे हम सभी पर अपने आशीर्वाद की वर्षा करें। जिनके अनुपम प्रभाव का वर्णन करने में ब्रहमा, विष्णु तथा शिव भी समर्थ नहीं हैं। उन चंडिका देवी को जो समस्त जगत की माता हैं, जो पुण्यात्माओं के घर में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से, पापियों के घर में दरिद्रता रूप में निवास करती हैं, हम प्रणाम करते हैं।"

''उन जगन्माता, देवी माँ को हम भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। हे देवि, हम आपको कैसे प्रसन्न कर सकते हैं? परा प्रकृति, सर्वव्यापक देवी आप तीनों जगत का कारण हैं। आप मोक्ष हैं। आप विद्या हैं, जो मोक्ष प्रदान करती हैं। आप ऋक्, यजु और साम हैं। आप दुःखों का नाश करने वाली हैं। हे देवि, आप बुद्धि हैं। आप सभी शास्त्रों का सार हैं। आप दुर्गा हैं जो इस संसार सागर को पार करने के लिए एक नाव हैं। आप गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती हैं! आप कितनी सुंदर और कितनी भयंकर हैं। आप धन्य हैं। वास्तव में वे भक्त कितने भाग्यशाली हैं जिनके ऊपर सदा आपकी कृपावृष्टि होती रहती है, और उन्हें क्या चाहिए। आपके स्मरण मात्र से हे दुर्गा! आप भक्त को मोक्ष प्रदान करती हैं। आप उनके भय का नाश करती हैं, उन्हें बुद्धि प्रदान करती हैं, उनकी निर्धनता का उन्मूलन करती हैं। आप इतनी दयालु हैं, कि हे देवी आप जीवों को स्वर्ग देती हैं। हे देवी, आपको बारंबार प्रणाम है। आपने असुरों का नाश किया है तथा संपूर्ण जगत के लिए शांति लाई हैं। इतने महान कार्य करना आसान नहीं है। हे देवि, हमारी रक्षा करें, आप हमारी चारों ओर से, आगे से, पीछे से, दायें से, बायें से, ऊपर से, नीचे से रक्षा करें।"

इस प्रकार देवों के स्तवन तथा षोडशोपचार पूजा से प्रसन्न कर देवी ने मुस्कराते हुए कहा, "हे देवताओ! मैं प्रसन्न हूँ, आप मुझसे एक वरदान माँगें, मैं आप को प्रदान करूंगी।" देवताओं ने कहा, "हे देवि, ऐसा कोई कार्य नहीं है जो आपने हमारे लिए नहीं किया। आपने महिषासुर को मारा। यदि आप हमें वरदान देना चाहती हैं तो यह दीजिए कि जब-जब हम आपका स्मरण करें, तब आप यहाँ आ कर हमारे कष्टों का निवारण करें। जो भी उपरोक्त प्रकार से आपकी स्तुति करें वह सदा समृद्धिशाली रहें।" ऋषि बोले : देवताओं के द्वारा स्तोत्रों से इस प्रकार देवी प्रसन्न हुई और उन्होंने

तथास्तु कहा और वे अन्तर्धान हो गईं। इस प्रकार मैंने तीनों लोकों की प्रिय माता की महिमामय कथा तुम्हें सुनाई। पुनः उन्होंने गौरी के रूप में शुभ और निशुंभ के वध के लिए, पृथ्वी पर धर्म की स्थापना के लिए और देवताओं की सहायता के लिए जन्म लिया। अब मुझसे वे कहानियाँ सुनो।

अथ उत्तरचरितम्

पञ्चमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधती घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।।

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच ॥। १॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥२॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥३ ॥

तावेव पवनद्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥। ४ ॥

हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ।। ५।।

तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥६॥

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७ ॥

देवा ऊचुः ॥८ ॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।।९ ।।

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ||१०||
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ।। ११ ।।

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ।।१२।।

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ।।१३।।

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१४-१६ ।।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१७-१९।।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२०-२२ ।।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२३-२५ ।।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२६-२८ ।।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२९-३१।।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३२-३४।।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३५-३७।।

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३८-४० ।।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।४१-४३ ।।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।४४-४६ ।।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।४७-४९।।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्‌धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।५०-५२।।
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।५३-५५।।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।७६-७८।।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।७९-६१ ।।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।६२-६४ ।।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।६५-६७ ।।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।६८-७०।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।७१-७३।।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।७४-७६ ।।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥७७॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।७८-८० ।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।। ८१ ।।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीषा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ।। ८२ ।।

ऋषिरुवाच ।।८३ ।।

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययी तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ||८४ ॥

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ।। ८५ ।।

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६ ॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥८८॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयो।८९ ॥

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९० ॥

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ।।९१ ।।

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ।। ९२ ।

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ।।९३ ॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः।।९४।।

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ।।९५ ।।

निधिरेष महापराः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ।।९६ ।।

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ।। ९७ ।।

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ||९८||

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ||९९||

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ।। १०० ।

ऋषिरुवाच ।। १०१ ।

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ।। १०२ ।।

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ।। १०३ ।।

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।।१०४ ।।

दूत उवाच ।।१०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ।। १०६ ।।

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ।।१०७ ।।

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ।। १०८ ।।

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ।। १०९ ।।

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ।।११० ।।

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ।। १११ ।।

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ।। ११२ ।।

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ।।११३ ।।

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज।। ११४ ।।

ऋषिरुवाच ।। ११५ ।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्।।११६ ।।

देव्युवाच ।। ११७ ।।

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ।।११८।।

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा।।११९ ।।

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।। १२० ।।

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ।।१२१ ।।

दूत उवाच ।।१२२ ।।

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ।।१२३ ।।

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।। १२४ ।।

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।। १२५ ।।

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ।।१२६ ।।

देव्युवाच ।। १२७ ।।

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।।१२८ ।।

सत्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।। १२९ ।।
।। ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः
।। ५।।

उत्तर चरितम्

पंचम अध्याय

ऋषि कहते हैं : पूर्वकाल में शुंभ तथा निशुंभ ने कठोर तपस्या करके ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त कर लिया और इंद्र के हाथों से स्वर्ग का राज्य छीन लिया और तीनों लोकों के स्वामी बन बैठे। उन्होंने सूर्य, यम, वरुण, अग्नि तथा अन्य देवताओं के स्थानों पर नियंत्रण कर लिया। वे तो यहाँ तक कि वायु का भी कार्य करने लगे, इस कारण देवताओं के पास कोई कार्य न रहा। असुर तीनों लोकों के रहवासियों को परेशान करने लगे और चारों ओर बेचैनी हो गई। देवता गण बहुत दुःखी हो गए और उन्हें महामाया के वचन का स्मरण हुआ कि उन्होंने देवताओं को वचन दिया था कि जब भी वे आपत्ति में होंगे और देवी का भक्तिपूर्वक स्मरण करेंगे तो वे उनकी सहायता के लिए आएँगी। इस तथ्य का स्मरण करके सभी देवता हिमवान के पास गए और महामाया विष्णुमाया से सच्चे हृदय से प्रार्थना की।

देवताओं ने कहा, “देवी माँ को प्रणाम है। उस महादेवी प्रकृति, मंगलमयी माँ को बारंबार प्रणाम है। रौद्रा को प्रणाम है। नित्या, गौरी, ज्योत्सनामयी देवी को प्रणाम है। उस दुर्गा को प्रणाम है जो सारा, सर्वकारिणी, सर्व सौंदर्यमयी, सर्व रौद्रस्वरूपिणी हैं। उस देवी को प्रणाम है जो सभी प्राणियों में विष्णुमाया कहलाती है। उसे बारंबार प्रणाम है जो सभी प्राणियों में चेतना के रूप में, बुद्धि के रूप में, निद्रा के रूप में, क्षुधा के रूप में, छाया रूप में, प्यास रूप में, शक्ति के रूप में, तृष्णा के रूप में, क्षमा रूप में, जाति के रूप में, लज्जा के रूप में, शांति के रूप में, विश्वास के रूप में, सौंदर्य के रूप में, समृद्धि के रूप में, प्रयत्न के रूप में, स्मृति के रूप में, करुणा के रूप में, संतोष के रूप में, माँ के रूप में, मोह के रूप में स्थित हैं। जो देवी इस जगत को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको बारंबार प्रणाम है। वे देवी हम असहाय देवों पर अपने आशीर्वाद की वृष्टि करें।

ऋषि ने कहा : जब देवता स्तुति कर रहे थे, उसी समय पार्वती जी गंगाजी के जल में स्नान के लिए वहाँ आईं। उन्होंने देखा कि देवता गण स्तुति कर रहे हैं, तो उन्होंने प्रश्न किया कि आप किसकी स्तुति कर रहे हैं ? जब वे इस प्रकार प्रश्न कर रही थीं कि उनके शरीर में से एक अत्यंत अदभुत आकृति जिसकी कांति अवर्णनीय थी. प्रगट हुई और उसने पार्वती देवी से कहा, "मैं दुर्गा हूँ, इस जगत की शक्ति। ये देवता शुंभ-निशुंभ से पराजित हो गए हैं और मुझसे सहायता के लिए प्रार्थना कर रहे हैं।" चूँकि वह पार्वती के कोश से उत्पन्न हुई थी इसलिए वह कौशिकी कहलाई। महामाया को अपनी सुरक्षा के लिए आयी देख कर देवता गण बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने देवी को

हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। कल्याणमयी माँ ने कहा, "आप सभी देवता गण अपने-अपने स्थानों को लौट जायें, मैं सब देख लूँगी।" देवता गण वापस चले गये। और देवी हिमालय पर्वत पर एक वृक्ष के ऊपर बैठी रहीं।

उसके पश्चात संयोगवश शुंभ-निशुंभ के भृत्य चंड तथा मुंड वहाँ भ्रमण करते. हुए आए, उन्होंने एक परम मनोहर रूप धारिणी स्त्री को वृक्ष पर बैठे देखा। वे तत्काल अपने स्वामी शुंभ-निशुंभ के पास दौड़े चले गए और उन्हें बताया कि हिमालय में एक अत्यंत सुंदर स्त्री है। उसके सौंदर्य का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है। वह इतनी सुंदर है कि आपके महल की सारी रानियाँ उसके समक्ष तुच्छ हैं। आपकी समस्त संपत्ति उसके समक्ष कुछ भी नहीं है। आपका गौरव उसकी तुलना में कुछ नहीं है। आपकी वीरता उसके सामने कुछ भी नहीं है। आपका राज्य उसके समक्ष कुछ भी नहीं है, आपका अभिमान उसके सामने कुछ भी नहीं है।

वह इन सबसे कहीं अधिक है। वहाँ जाइये और उसे ले आइये। वही सच्ची संपत्ति है। वह समस्त हिमालय को प्रकाशित कर रही है। वह स्वर्ग की समस्त स्त्रियों के मध्य रत्न स्वरूप है। हे राक्षसराज! आप स्वयं उसे एक बार जा कर देखिये। हे राजन आपने इंद्र से ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष, उच्चैश्रवा अश्व, पुष्पक विमान तथा तीनों लोकों की समस्त सम्पत्ति ले ली है। आप सोम रस, महापद्म निधि, अमल पंकज की माला जिसके पुष्प कभी मुरझाते नहीं हैं तथा स्वर्ण तथा रत्नों से जड़ित छत्र ले आए हैं। आपने ब्रह्मा की शक्ति, वरुण का अस्त्र, अग्नि का तेज छीन लिया है। आप हर एक चीज ले आए हैं, लेकिन आप इन सब का जो सार है उसे नहीं ला सके हैं। और वह सार है, हिमालय में वह सुंदर स्त्री।

ऋषि ने कहा : चंड-मुंड के इन शब्दों को सुन कर शुंभ ने अपने महादैत्य दूत सुग्रीव को देवी दुर्गा को शुंभ की रानी बनने के लिए प्रसन्न करने के लिए भेजा। सुग्रीव ने तत्काल हिमालय में देवी के निवास स्थल हेतु प्रस्थान कर दिया और हिमालय में जहाँ दुर्गा अत्यंत रमणीय स्थल में स्थित थीं, वहाँ जा कर वह देवी से अत्यंत मधुर तथा कोमल वचन बोला।

दूत ने कहा, "देवि! असुरों के राजा शुंभ तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं उनका दूत उनके द्वारा आपके पास भेजा गया हूँ। उन्होंने मेरे द्वारा आपके लिए यह संदेश भिजवाया है कि 'सभी तीनों लोक मेरे हैं। मैंने देवताओं पर विजय प्राप्त कर ली है। सम्पूर्ण यज्ञों के भाग को मैं ही भोगता हूँ। तीनों लोकों की सम्पत्ति मेरी है। मैं सबका इंद्र हूँ। मैंने समुद्र राज को विजित कर लिया है और उसकी संपत्ति छीन ली है। गंधर्वों, देवों, नागों, सिद्धों, चारणों की जो भी सम्पत्ति है, वह सब मेरी है। मुझे विश्वास है। कि तुम स्वर्ग में सर्वाधिक सुंदर स्त्री हो। कृपया मेरे साथ आओ; क्योंकि समस्त सम्पदा

और समृद्धि का स्वामी मैं ही हूँ। तुम मेरे साथ अथवा मेरे भाई निशुंभ जो कि मेरे बराबर ही शक्तिशाली है, के साथ विवाह कर सकती हो। इससे तुम तीनों लोकों का स्वामित्व प्राप्त करोगी। इस पर विचार करो और शीघ्र ही मुझे उत्तर दो' ।'

ऋषि बोले : सुग्रीव की ये बातें सुन कर जगन्माता, समस्त लोकों का आधार कल्याणमयी देवी माँ ने मुस्करा कर गंभीर शब्दों में निम्न बातें कहीं, "हाँ, हाँ, तुम सत्य कह रहे हो, इसमें कोई संदेह नहीं है कि शुंभ तीनों लोकों का स्वामी है और निशुंभ भी उसके समान ही शक्तिशाली है, लेकिन किया क्या जाए? अज्ञानतावश मैंने एक शपथ ली है, अब मैं उसे कैसे तोड़ सकती हूँ? जो भी मुझे युद्ध में पराजित करेगा, वही मेरा पति होगा। इसलिए शुंभ-निशुंभ यहाँ आयें और मुझे पराजित करें और सरलतापूर्वक मेरा पाणिग्रहण कर लें।" दूत ने कहा, " अरे मूर्ख लड़की! तुम गलती कर रही हो। तीनों लोकों में ऐसा कौन है जो भयंकर शुंभ-निशुंभ का सामना करने का साहस भी कर सके ? सभी असंख्य देवता गण भी शुंभ की शक्ति के सामने ठहर नहीं पाये तो तुम अकेली स्त्री हो कर कैसे ठहर सकती हो। जब इंद्र शुंभ से युद्ध में पराजित हो गया तो तुम एक अनुभवहीन कन्या क्या कर सकोगी? मेरे साथ शुंभ-निशुंभ के महल चलो, अन्यथा अतिशीघ्र तुम्हें केश पकड़ कर बलपूर्वक घसीट कर ले जाया जायेगा।"

देवी ने कहा, "मैं इस बात से सहमत हूँ कि शुंभ और निशुंभ शक्तिशाली हैं। लेकिन मैं अब कुछ नहीं कर सकती। मैंने यह अज्ञानतापूर्ण शपथ लंबे समय पहले ले ली थी। अब मैं इसी के अनुसार कार्य करूँगी। कृपा करके वापस जाओ और उनको ये बातें बताओ। फिर जैसा वे चाहें, उन्हें करने दो।"

षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवांकनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।। १ ॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥३ ॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानाय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥। ४ ॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ।। ५।।

ऋषिरुवाच ।। ६ ।।

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः पष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥७ ॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥८ ॥

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ।।९ ।।

देव्युवाच ॥ १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ।। ११ ।।

ऋषिरुवाच ।। १२ ।।

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ।। १३ ।।

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ।। १४ ।।
ततो 'धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ।।१५ ।।

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ।।१६ ।।

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ।।१७।।

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ।।१८।।

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ।।१९।।

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ||२०||

चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डी महासुरौ ।। २१ ।।

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ।। २२ ।।

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ।।२३।।

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ।। २४ ।।

।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ।। ६।।

षष्ठ अध्याय

ऋषि ने कहा : इन शब्दों को सुन कर दूत को बड़ा ही क्रोध आया। उसने दैत्यराज के पास जा कर हर बात को बढ़ा-चढ़ा कर कह सुनाया। असुरराज क्रोध में भर उठा और उसके लिए इसे नियंत्रित करना कठिन था, उसने तत्काल ही अपने सेनापति धूम्रलोचन को बुलाया और कहा, "हे धूम्रलोचन, तुम अपनी सेना सहित जाओ और उस दुष्ट स्त्री को घसीटते हुए खींच कर ले कर आओ। उसकी रक्षा करने के लिए यदि वहाँ कोई गंधर्व, यक्ष अथवा देव हो, जो उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करे, उसे तत्क्षण मार डालना । "

ऋषि ने कहा: शुंभ के आदेश से असुर सेनापति साठ हजार असुरों की सेना ले कर हिमालय की ओर चल पड़ा। उसने वहाँ देवी को देख कर कहा, "तुम तुरंत शुंभ-निशुंभ के पास चलो। यदि तुम सरलता से नहीं आओगी तो मैं तुम्हें केश पकड़ कर घसीटते हुए . ले जाऊँगा।" देवी ने कहा, "यदि तुम असुर सेना के सेनापति हो और तुम्हारे राजा ने मुझे केश पकड़ कर बलपूर्वक खींच कर लाने के लिए भेजा है तो मैं क्या कर सकती हूँ?"

ऋषि ने कहा : देवी के इन शब्दों को सुन कर असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा और देवी की हुंकार मात्र से ही वह भस्म में बदल गया। देवी ने असुर सेना पर तीरों की वर्षा की। इतने में देवी का वाहन सिंह जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि सूखे वन में फैलती है उसी प्रकार वह राक्षसों के ऊपर टूट पड़ा। असुरों के शीश देवी के खड्ग से कट-कट कर गिर गए और उनके सिंह के द्वारा किए गए विनाश की तो कोई सीमा ही नहीं थी, भूमि पर मृत गिरे हुए असुरों के रक्त का उसने पान किया। एक ही क्षण में वहाँ पूरी असुर सेना नष्ट हो गई।

यह समाचार शुंभ के कानों तक पहुँचा और उसके क्रोध की कोई सीमा न रही। वह अपने होंठ काटने लगा और उसने अपने विश्वसनीय सहयोगियों चंड-मुंड को इस प्रकार आदेश दिया, "हे चंड! हे मुंड! एक बड़ी सेना एकत्रित करके तत्काल वहाँ जाओ। उसे मेरे पास ले कर आओ। अधिक देरी मत करो। जल्दी करो। उसको केश से पकड़ कर घसीटते हुए अथवा रस्सियों से बाँध कर यहाँ ले कर आओ। यदि ऐसा संभव न हो तो उसे युद्ध में मार डालो। जैसा भी तुम्हें ठीक लगे, वैसा करना। उसके भयंकर सिंह को मार देना और उसे बाँध कर मेरे पास ले आना। सारा काम बड़ी ही होशियारी से करना । "

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकांघ्रि सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कहाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शंखपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥२ ॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥३ ॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये सत्समीपगाः ॥। ४ ॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥५॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्भुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ||६ ॥

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥७ ॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥८ ॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ।।९ ।।

पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ।।१०।।

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ।। ११ ।।

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ।। १२ ।।

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।
मुखेन जग्राह रुपा दशनैर्मथितान्यपि ।।१३।।
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममदभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ।।१४।।

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ।।१५।।

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुराः ।
छादयामास चक्रेश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ।।१७।।

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कविम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ।। १८ ।।

ततो जहासातिरुपा भीमं भैरवनादिनी ।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ।।१९।।

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ||२०||

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुपा ।।२१ ।।

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ।। २२ ।।

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ।। २३ ।।

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डी महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ।।२४ ।।

ऋषिरुवाच ।। २५ ।।

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच काली कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ।।२६ ।।

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ।। २७ ।।

।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः
।।७।।

सप्तम अध्याय

ऋषि कहते है : असुरराज की आज्ञा पा कर चंड-मुंड के नेतृत्व में चतुरंगिनी असुर सेना हिमवान की ओर चल पड़ी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सिंह पर सवार देवी का मंद-मंद इस प्रकार मुस्कराते देखा जैसे वह उनकी ओर देख कर गर्व से मुस्का रही हो। उन्होंने देवी को तत्परता से पकड़ने का उद्योग किया। वे देवी के पास आने के लिए तीरों, तलवारों का प्रयोग करने लगे। अम्बिका उन पर बहुत क्रोधित हो गयी और उनका वर्ण स्याही की भाँति काला पड़ गया। उसके मस्तक के मध्य से एक विकराल काली प्रगट हुई जो भयंकर अस्त्र धारण किए थी। देवी का मुख भयंकर था और उनके गले में राक्षसों के मुंडों की माला थी। देवी के पास अद्भुत अस्त्र थे और उनका रूप राक्षसों के हृदय को भी विदीर्ण कर देता था। अरे देवी का रूप अत्यंत भयंकर और कठोर था। कोई भी उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं है। देवी ने संपूर्ण ब्रह्मांड को आवृत्त कर रखा था। देवी के मुख ने पूरे आकाश को आवृत्त कर लिया था और उससे अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। उनकी आँखें लाल थीं। देवी ने गर्जना की जिससे असुर काँपने लगे। वे असुरों पर टूट पड़ीं और एक-एक बार में हजारों की संख्या में असुरों को नष्ट करने लगीं। वे असुरों को अपने भोजन की भाँति खाने लगीं और वे भी देवी के लिए पर्याप्त न थे। वे एक ही बार में हजारों राक्षसों को पकड़ कर उन्हें अपने बृहत मुख में डाल लेती थीं। सेना के नायकों, अनेक अहंकारी रथी तथा महान असुर योद्धाओं को काली ने चबा लिया। रथ के बाद रथ देवी के मुख में प्रवेश करते जा रह थे। उनके दाँतों के द्वारा हाथियों के बाद हाथियों का चूर्ण होता जा रहा था। कुछ उन्होंने कंठ से तथा कुछ को केशों के द्वारा पकड़ कर और कुछ को पैरों के द्वारा ठोकर को लगा कर पैरों तले रौंद दिया। असुरों के द्वारा छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्रों को वे खेल ही खेल में टुकड़े कर डालती थीं। कुछ असुर उनके हाथों से बुरी तरह से पीटें गए तथा कुछ उनका भोजन बन गए। कुछ उनकी तलवार द्वारा काट डाले गए तथा कुछ देवी की दृष्टि मात्र से ही संज्ञा शून्य हो गए। पलक झपकते ही देवी ने राक्षस सेना का नाम कर दिया।

इस भयंकर सेना को देख कर चंड काली की ओर तेजी से दौड़ा। उसने हजारो चक्रों, भाला, तलवारों, पाशों और त्रिशूलों से देवी पर आक्रमण किया। मुंड ने भी देवी पर चारों ओर से हजारों तीरों की वर्षा की। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे तीरों के बादलों ने सूर्य को आवृत्त कर लिया हो। असुरों के ये कार्य देख कर देवी ने अत्यंत क्रोध में आ कर भयंकर अट्टहास किया और चंड की ओर तेजी से दौड़ीं और उसके केश पकड़ कर अपनी तलवार से उसकी गर्दन काट दी । अपने भाई को युद्ध में मारा गया देख कर मुंड अत्यंत क्रोधित हो कर देवी की ओर दौड़ा। देवी ने उसे भूमि पर गिरा दिया और उसका सिर काट कर फेंक दिया। चंड तथा मुंड को भूमि पर मरा देख कर शेष असुर सेना उल्टे

पैरों चारों दिशाओं में भाग खड़ी हुई। चंड तथा मुंड के शीश अपने हाथों में ले कर दुर्गा से कहा, “मैंने चंड तथा मुंड को युद्ध में बलिदान किया है। अब तुम स्वयं ही शुंभ और निशुंभ का वध करना।'

ऋषि ने कहा : इस प्रकार चंड-मुंड के सिर लाए जाने पर कल्याणी माँ ने कहा कि चूँकि तुम चंड-मुंड के सिर लाई हो, इस कारण तुम जगत में चामुंडी कहलाओगी।”

अष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशांकुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।। १ ।।

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥२॥

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३ ॥

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥। ४ ॥

कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥७ ॥

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥८॥

ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ।।९ ।।

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ।।१०।।

तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ।। ११ ।।

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ।।१२ ।।

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ।।१३ ।।

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ।। १४ ।।

हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ।। १५ ।।

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ।।१६ ।।

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी।।१७।।

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययो ।।१८ ।।

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या विभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं विभ्रती तनुम् ।।१९।।

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्मा तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ||२०||

वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा.॥२१॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२२॥

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२३॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥२४॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥२५॥

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ। २६ ।।

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकांक्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ।।२८ ॥

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ।।२९ ॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ।।३०।।

सा च तान् प्रहितान् वाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ।।३१।।

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ।।३२ ।।

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ।। ३३ ।।

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ।। ३४ ।।

ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः। ।।३५ ।।

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ।।३६ ||

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ।।३७ ।।

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ।।३८ ।।

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ।।३९ ।।

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ||४० ।।

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।४१ ।।

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ।।४२ ।।

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्द्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५ ॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ||४६ ||

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ।।४८ ।।

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ।।४९ ।।

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५० ॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥

तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५२ ॥

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३ ॥

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ।।५४ ।।

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ।।५५ ।।

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ।।५६ ।।

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ।।५७ ।।

न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ।।५८ ।।

यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ।।५९ ।।

तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिरृष्टिभिः ||६० ||

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ।।६१ ।।

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ।।६२ ।।

तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ।। ६३ ।।
।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नाम अष्टमोऽध्यायः
॥८॥

अष्टम अध्याय

ऋषि ने कहा : चंड और मुंड का वध हो जाने पर तथा उसकी सेना के शक्ति हीन हो जाने पर असुरराज शुंभ को शांति न रही। उसने समस्त दैत्य सेना को एकत्र होने का आदेश दिया और कहा, "मेरी समस्त सेना अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित हिमालय में जो स्त्री है उसकी ओर प्रस्थान करे। मेरे समस्त चौरासी दैत्य सेनापति अपनी हाथी सेनाओं सहित युद्ध हेतु प्रस्थान करें तथा चौरासी दैत्य सेनापति अपनी अश्वारोहिणी सेना के साथ युद्ध हेतु प्रस्थान करें। पचास कोटि शक्तिशाली योद्धा और धूम्रासुर के सौ असुर सेनापति अपनी सेना सहित कूच करें। कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय अन्य असुरों के साथ उस स्त्री के विरुद्ध युद्ध हेतु प्रस्थान करें।"

इस प्रकार आदेश दे कर भयंकर शुंभ इस प्रकार चला जैसे कि वह अपने क्रोध में संपूर्ण विश्व को उखाड़ फेंकेगा। उसकी अत्यंत भयंकर सेना को आते देख कर देवी माया ने अपने तीरों की वर्षा से संपूर्ण पृथ्वी तथा आकाश को आवृत्त कर लिया और जिसके कारण देखना असंभव हो गया। उनका सिंह इस प्रकार दहाड़ने लगा जैसे कि कल्प का अन्त आ गया हो। देवी के अस्त्रों, तीरों तथा सिंह की आवाज, उनके घंटों, शंखों तथा धनुष की टंकार से और भी अधिक बढ़ गई। इन ध्वनियों को सुन कर असुर देवी, सिंह तथा काली को घेरने लगे। इसी स्मरणीय अवधि में जगत के कल्याण तथा असुरों के नाश के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा स्कंद और इंद्र की शक्तियाँ जो अत्यंत पराक्रम तथा बल से सम्पन्न थीं, दुर्गा देवी के शरीर में प्रविष्ट हो गईं। जिस देवता का जैसा रूप था, ठीक वैसे ही शस्त्रों से सम्पन्न हो कर उसकी शक्ति असुरों से "युद्ध करने के लिए आई।

ब्रह्मा जी की शक्ति हंस के विमान पर सवार कमण्डल लिए हुए आई, महादेव की शक्ति वृषभ पर आरूढ़ हो कर त्रिशूल लिए, नाग तथा मस्तक पर चंद्रमा से विभूषित हो कर आई, कार्तिकेय जी की शक्ति मयूर पर आरूढ़ हो कर हाथ में शक्ति लिए आई। विष्णु भगवान् की शक्ति गरुड़ पर आरूढ़ हो कर शंख, चक्र, गदा, श्रृंग और खड्ग हाथ में ले कर आई। इसी प्रकार वराह और नरसिंह भगवान् की शक्ति भी आई और इंद्र की शक्ति हाथी पर आरूढ़ हो कर तथा वज्र हाथ में ले कर आई। उनके सहस्र नेत्र थे। उसके बाद देवी के शरीर में से उनकी शक्ति का शक्तिशाली स्वरूप (काली) प्रगट हुआ जो कि अपने रूप से समस्त जगत को भयभीत करने वाला था। देवी ने अपने दूत शिव की शक्ति को बुलाया और कहा, "असुरों के पास जाओ और कहो कि इंद्र स्वर्ग पर राज्य करेंगे, देवता यज्ञ भाग का उपभोग करेंगे। दैत्य यदि जीवित रहना चाहते हैं तो पाताल लौट जाएँ। यदि वे मुझसे युद्ध करने आना चाहते हैं, तो उन्हें आने दो, मैं उनके रक्त का आनंदपूर्वक पान करूँगी।" चूँकि वे काली का संदेश ले कर गई थीं, इसलिए उन्हें शिवदूती कहा गया।

काली का गर्वपूर्ण संदेश सुन कर असुर क्रोधित हो उठे और देवी को मारने के लिए दौड़े। दैत्यों ने कात्यायिनी के ऊपर चारों ओर से सभी प्रकार के अस्त्रों से प्रहार किया। लेकिन कात्यायिनी ने उनके ऊपर अधिक शक्तिशाली तीरों तथा दिव्यास्त्रों की वर्षा की। जिसने कि असुरों को अपने अस्त्रों का प्रहार करने से रोक दिया। इसके बाद काली ने अपनी अभेद्य शक्ति से तूफानी हवा की भाँति असुरों को खदेड़ दिया तथा उन्हें अपने पैरों तले रौंद डाला। ब्रह्माणी ने अपने कमंडल से जल छिड़क कर असुरों की शक्ति खींच ली। चक्र और त्रिशूल से देवी ने कितने असुरों का संहार किया, उन्हें गिनना संभव नहीं है। वज्र और शक्ति के साथ देवी उसी प्रकार असुरों पर टूट पड़ी जिस प्रकार गरुड़ सर्पों पर टूट पड़ते हैं। उनके वज्र के प्रहार से हजारों की संख्या में दैत्य रक्त वमन करते हुए तथा अंग-भंग हो कर भूमि पर गिर पड़े। देवी ने अपने वाराह रूप से उन्हें अपने थूथन की मार से इधर से उधर फेंका और मार डाला। नरसिंह रूप के द्वारा वे दहाड़ती हुई राक्षसों को खाने लगी। देवी के द्वारा निर्मित दूतियाँ असुर सेना में भय उत्पन्न करने लगीं तथा उन्हें डरा कर अपना ग्रास बनाने लगीं। माँ की शक्तियों द्वारा (सेना का नाश होते देख कर सेना नायक रक्तबीज अत्यंत क्रोध में भर कर युद्ध के असुर लिए आया। उसके शरीर से गिरने वाली प्रत्येक बूंद से उसके ही समान शक्तिशाली दूसरा दैत्य उत्पन्न हो जाता था।

रक्तबीज अपने मारक अस्त्रों के साथ इंद्राणी के साथ युद्ध करने लगा। इंद्राणी ने अपने वज्र से उसके हाथ काट दिये, जिससे उसका बहुत सा रक्त बहा और पृथ्वी पर गिरा जिससे कि रक्तबीज के ही समान शक्तिशाली अनेक राक्षस उत्पन्न हो गए। जितना रक्त उसके शरीर से गिरता था उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाते थे और ये सभी चारों ओर से देवी के साथ युद्ध करने लगे। जब देवी ने वज्र से रक्तबीज के सिर पर प्रहार किया तो उसके सिर से रक्त की एक तीव्र धार बही और उसके पृथ्वी पर गिरने से हजारों हजार राक्षस उत्पन्न हो गए और वे सभी देवी से युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते अचानक देवी की गदा से रक्तबीज के सिर पर चोट लगी जिससे कि रक्त की मोटी धार पृथ्वी पर गिरने से असंख्य राक्षस उत्पन्न हो गये और देवी से युद्ध करने लगे। इसी समय देवी ने अपने चक्र से उसे घायल कर दिया जिससे कि उसके शरीर से रक्त की मोटी धारा पृथ्वी पर गिरी जिससे कि असंख्य राक्षस उत्पन्न हो गए और संपूर्ण पृथ्वी और आकाश भयंकर राक्षसों से परिपूर्ण हो गया। जब देवताओं ने देखा कि संपूर्ण जगत राक्षसों से भर गया है और ये किसी भी तरह मारे नहीं जा रहे हैं, वरन संख्या में बढ़ते ही जा रहे हैं, तो देवता भी भयभीत हो गए।

देवताओं को निराश देख कर, देवी ने काली को अपने मुंह को बड़ा करके अपनी बड़ी जीभ बाहर निकालने के लिए कहा और कहा, “हे काली, जब मैं अपने अस्त्रों से इन राक्षसों का नाश करूँ तो रक्त की एक बूँद भी नीचे मत गिरने देना। अपनी लंबी जिह्वा से उनका रक्त पी जाओ। रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न सभी राक्षसों को तुम खा जाओ। ऐसा करने पर वह असुर पूर्णतया नष्ट

हो जाएगा।" ऐसा कह कर देवी ने रक्तबीज पर अपने त्रिशूल से प्रहार किया। काली ने अपना मुख फैला कर उसके रक्त का पान किया। देवी के त्रिशूल के प्रहार से रक्तबीज अंतिम बार जोर से दहाड़ा अत्यंत बलपूर्वक देवी के ऊपर गिर पड़ा। देवी ने चक्र के प्रहार से उसके जीवन का और अन्त कर दिया, इस समय जो रक्त निकला उसे भी काली ने पी लिया । काली ने रक्तबीज से उत्पन्न सभी राक्षसों को खा लिया और रक्तबीज के रक्त को पी लिया। रक्तबीज पर्वत की भाँति पृथ्वी को कंपाते हुए भूमि पर गिर पड़ा। सभी देवता अत्यंत प्रसन्न हो गए। स्वर्ग की अप्सराऐं नृत्य करने लगीं और गीत गाने लगीं।

नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशांकुशी च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ।।

'ॐ' राजोवाच ॥ १ ॥
विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥३ ॥

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥५॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥६॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७ ॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिका कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८ ॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ।।९ ।।

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ।।१०।।

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ।। ११ ।।

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ।।१२।।

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ।।१३ ।।
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ।। १४ ।।

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ।।१५।।

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ।।१६।।

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ।।१७।।

स रथस्तस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ।। १८ ।।

तमायान्तं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ।। १९ ।।

पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ||२०||

ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ।।२१ ।।

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ।।२२ ।।

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ।।२३ ।।

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ।। २४ ।।

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ।। २५ ।।

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ||२७||

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ।।२८ ।।

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ।।२९।।

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ।।३० ॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ।।३१ ।।

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ।। ३२ ।।

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ।।३५ ।।

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावद्भुवि ||३६||

ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचित्रेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८ ॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ।।३९ ।।

खण्ड खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ।। ४१ ।।

।। ॐ ।।

ति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ।। ९।।

नवम अध्याय

राजा ने कहा, "हे ऋषि! यह अद्‌भुत कहानी आपने मुझे सुनाई है। देवी की महिमा अद्‌भुत है और रक्तबीज की मृत्यु अद्‌भुत है। मैं अब यह सुनना चाहता हूँ कि रक्तबीज की मृत्यु के बाद शुंभ-निशुंभ तथा अन्य महा असुरों ने क्या किया ?'

ऋषि ने कहा : रक्तबीज की मृत्यु तथा समस्त असुर सेना के नाश के बारे में सुन कर असुरराज निशुंभ बड़ा ही क्रोधित हो उठा और उसने सशस्त्र सेना को ले कर देवी पर आक्रमण किया। सभी दसों दिशाओं से असुरों ने विष-बुझे अस्त्रों, मायावी अस्त्रों, अभेद्‌य आग्नेयास्त्रों से देवी पर प्रहार किया। शुंभ भी देवी को पकड़ने के लिए बड़ी सेना ले कर आया। उसने देवी के अनेक रूपों जैसे काली, वैष्णवी, रौद्री, ब्राह्मी, नारसिंही आदि के साथ युद्‌ध किया। देवी और शुंभ-निशुंभ के मध्य अविस्मरणीय युद्‌ध हुआ। यह युद्‌ध अद्‌भुत और भयंकर था। देव गण काँपने लगे। आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। देवी अत्यंत साहसपूर्वक असुरों पर टूट पड़ी। निशुंभ ने एक तेज धार वाली तलवार ले कर देवी के शेर पर आक्रमण कर दिया और उस पर कई वार किए। देवी ने तत्काल अपने चक्र से उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। निशुंभ अत्यंत क्रोधित हो उठा और उसने अपनी शक्ति, शूल और खड्‌ग का प्रयोग किया; किंतु देवी और अधिक क्रोधित हो गई और उसने निशुंभ को घायल करके भूमि पर पटक दिया।

अपने भाई को भूमि पर गिरा हुआ देख कर शुंभ अम्बिका को मारने दौड़ा। वह एक रथ पर सवार हो कर युद्‌ध कर रहा था। उसने आठ हाथों में अस्त्र धारण कर रखे थे और सम्पूर्ण आकाश को आवृत्त कर रखा था। देवी ने शुंभ को अपनी ओर आते देख कर शंखनाद किया और संपूर्ण आकाश को भयंकर ध्वनि से गुंजायमान कर दिया और अपने धनुष • और बाणों से भयंकर ध्वनि उत्पन्न की। देवी का शेर अत्यंत उग्र रूप से दहाड़ा और सर्वत्र भयंकर भूचाल आ गया। देवी ने पृथ्वी पर अपने पैर को जोर से मारा और आकाश को भयंकर ध्वनि से गुंजायमान कर दिया। इस भयंकर ध्वनि ने पूर्व की समस्त ध्वनियों को निगल लिया। शिवदूती और काली बड़े ही जोर से और निष्ठुरतापूर्वक कूदीं। इन ध्वनियों से असुर बड़े ही क्रोधित हो उठे। अम्बिका ने जोर से कहा, 'अरे दुष्ट असुर ! तू कहाँ भागा जा रहा है। ठहर, ठहर जा! वहीं खड़ा रह। देवताओं ने आकाश से कहा, "विजय, विजय।" शुंभ की रोने की आवाज से संपूर्ण स्थान भर गया। शुंभ ने देवी के ऊपर हजारों-करोड़ों अत्र छोड़े। लेकिन वे सभी देवी के समक्ष एक सूखे तृण के समान थे। उसने इन सब को जला कर राख कर दिया। देवी ने अपने त्रिशूल से शुंभ के वक्षस्थल को बींध दिया। वह निश्चेष्ट हो कर भूमि पर गिर पड़ा। इसी समय निशुंभ को पुनः चेतना आ गयी और वह देवी के साथ अपने चक्र,

गदा, शूल और तलवार ले कर युद्ध करने लगा। देवी ने पुनः त्रिशूल से उसकी छाती को छेद दिया और उसके वक्ष में से पुनः एक भयंकर राक्षस प्रगट हो गया जिसने देवी को पुनः ललकारा। दुर्गा उस पर हँसी और एक ही वार में उसका सिर काट कर अलग कर दिया। कुछ असुरों को शेर ने खा लिया तथा कुछ को काली ने खा लिया। कुछ को कौमारी ने टुकड़े-टुकड़े कर दिया तथा कुछ ब्राह्मी के कमंडल से विदीर्ण हो गए। कुछ माहेश्वरी के त्रिशूल से बींधे गए तथा वाराही के थूथन से चूर-चूर हो गए, कुछ वैष्णवी के चक्र से टुकड़े-टुकड़े हो गए। कुछ इंद्राणी के वज्र से मारे गए। इस प्रकार सभी असुर देवी माता के किसी न किसी रूप द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो गए।

दशमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुतांकुशपाशशूलम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।।१ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥२॥

बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥३ ॥

देव्युवाच ॥४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥५॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥६॥

देव्युवाच ॥७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजी स्थिरो भव ॥८ ॥

ऋषिरुवाच ।।९।।

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ।। १० ।।
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।

तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ।।११।।

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ।।१२।।

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलायैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः।।१३ ।।

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ।। १४ ।।
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ।।१५ ।।

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ।।१६ ।।

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ।।१७।।

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ।।१८ ।।

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ।।१९ ।।

समुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः।। २१ ।।

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ।।२२ ।।

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ।।२३ ।।

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ।।२४ ।।

सक्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ।।२५ ।।

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ।।२६ ।।

स गतासुः पपातोय देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ।।२७ ।।

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ।।२८ ।।

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ।।२९ ।।

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यस्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।। ३१ ।।

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ।। ३२ ।।

।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

दशम अध्याय

ऋषि कहते हैं : निशुंभ मारा गया और शुंभ को यह अपमान सहन नहीं हुआ, वह देवी पर चिल्लाया, “हे दुर्बल और दुष्ट दुर्गा ! घमंड मत कर, तू तो किसी और का सहारा ले कर युद्ध कर रही है। देवी ने कहा, “मैं इस जगत में मात्र एक ही हूँ। यहाँ पर मेरे सिवा और कौन है? ये जो अन्य तुम्हारे साथ युद्ध करते दिखाई दे रही हैं, मैं स्वयं हूँ। अब मेरी ओर देख।" दुर्गा के ऐसा कहते ही सारे रूप दुर्गा के भीतर समा गए और वहाँ देवी के सिवा कोई नहीं था। देवी ने पुनः कहा, "शात रहो। मैं ही अन्तर्भूत तथा सर्वव्यापकता की शक्ति हूँ जो अनेक रूपों में प्रगट थी और अब स्वयं को स्वयं में समाहित करके अब अकेली खड़ी हूँ।”

ऋषि ने कहा : शुंभ पुनः भूमि पर से उठ कर खड़ा हो गया और उसने देवी से युद्ध किया। जैसे तितली आग पर झपटती है उसी प्रकार शुंभ देवी के ऊपर भयंकर झपटा। संपूर्ण जगत में कोई भी नहीं जानता था कि क्या होने वाला है? लेकिन सभी उत्सुकता से परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे। शुंभ ने संसार में जितने भी अस्त्र हैं, वे सब अम्बिका के ऊपर छोड़े। देवी ने खेल ही खेल में उनमें से कुछ को निगल लिया और कुछ को मात्र हुंकार से ही चूर-चूर कर दिया। शुंभ ने अपने धनुष-बाण, शक्तियाँ और आग्नेयास्त्र उठाये। देवी ने उसके रथ को घोड़ों और सारथि के सहित उलट दिया। शुंभ भूमि पर गिर पड़ा। उसने देखा कि उसके पास न तो रथ है, न घोड़ा है और न ही सारथि, तो वह गदा ले कर देवी पर टूट पड़ा। देवी ने तत्क्षण अपने बाणों से उस अस्त्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उसके बाद वह हाथ उठा कर मुक्के से दुर्गा के सिर को तोड़ने के लिए आया। उसने बलपूर्वक माँ के वक्षस्थल पर प्रहार किया। देवी ने अपनी गदा से उसके वक्ष पर प्रहार किया और वह पुनः निश्चेष्ट हो कर भूमि पर गिर पड़ा। पुनः चेतना आने पर वह आकाश में उड़ गया और देवी पर अनेक अस्त्र छोड़े। देवी भी आकाश में कूद गयी और बिना किसी अवलंबन के असुर के साथ युद्ध किया और उसे भूमि पर गिरा दिया। सिद्ध गण तथा देवता इस दृश्य को देख कर आश्चर्यचकित थे। पुनः शुंभ अपना हाथ उठा कर मुक्के से देवी को मारने के लिए दौड़ा। देवी ने अपना त्रिशूल उसके सीने में घोंप कर उसके सीने को दो भागों में चीर दिया और उसका अन्त कर दिया। वह समुद्र और पृथ्वी को कंपायमान करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। आकाश स्वच्छ हो गया। देवता प्रसन्न थे। जब उस दुष्ट दैत्य का अन्त हुआ तो समस्त जगत प्रसन्न था ।

गंधर्व गान करने लगे। स्वर्ग की अप्सराऐं प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करने लगीं। वृक्ष आनंदित हो उठे। नदियाँ तेजी से बहने लगीं। समुद्र शांत हो गया। अग्नि आनंदपूर्वक जलने लगी। वातावरण स्वच्छ हो गया। पृथ्वी भार से मुक्त हो गयी। वायु आनंद के साथ बहने लगी। सूर्य तेज चमकने लगा।

एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदां कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥

देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घयवीर्ये ॥४ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥६॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥७।।

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते॥८॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तुते ॥९॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१० ।।
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।। ११ ।।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।। १२ ।।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तुते॥१३॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तुते ।। १४ ।।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तुते ।।१५ ।।

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते ।।१६ ।।

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते। ।। १७ ।।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ।। १८ ।।

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तुते ।। १९ ।।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तुते॥२०॥

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१ ।।

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तुते॥२२॥

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते।।२३ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।।२४ ॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते।।२५ ।।

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते।।२६ ।।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव।।२७ ।।

असुरासृग्वसापंकचर्चितस्ते करोज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥२८ ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।।२९ ।।

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ।। ३१ ।।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।३२ ।।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥३३॥

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ।।३४ ।।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥३५ ॥

देव्युवाच ॥ ३६ ॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३७॥

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९ ॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्यते महासुरी ॥४१ ॥

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२ ॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४३ ॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४४ ॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५ ॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥४६ ॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ।।४७ ||

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ।।४८ ।।

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।। ४९ ।।

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।।५० ।।

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ।।५१ ।।

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।।५२ ।।

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ||५३ ||

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।।५४ ।।

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५५ ।।

।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्यें देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

एकादश अध्याय

अन्त

असुरों का अन्त हो जाने पर देवता बड़े ही प्रसन्न हुए और उनकी इच्छा पूर्ण हुई। तत्पश्चात वे देवी कात्यायिनी के पास आए और निम्नानुसार उनकी स्तुति की, "हे देवि! हे दुःखों का नाश करने वाली ! प्रसन्न हों। हे जगन्माता! हे विश्व को नियंत्रित करने वाली परम माता! हम सभी की रक्षा करें और इस जगत की रक्षा करें। आप इस जगत का आधार हैं। आप ही हैं जो जगत के रूप में प्रगट हुई हैं। आप जल हैं। आप तत्व हैं। आप विष्णुमाया हैं। आप बंधन और मुक्ति का कारण हैं। समस्त ज्ञान आपका ही रूप है। सभी स्त्रियाँ आप स्वयं ही हैं। हे माता! सब आपके ही द्वारा पूर्ण हैं। आप सभी पुरुषों में बुद्धि हैं। हे नारायणी! आप ही स्वर्ग और मोक्ष की दाता हैं। आप समय, स्थान और कारणत्व हैं। हे निराशों का आश्रय स्थल ! नारायणी! आपको बारंबार प्रणाम है। जो आपकी शरण हैं उन भक्तों की सभी बाधाओं का नाश करने वाली हे नारायणी! तुम्हें मेरा प्रणाम है।

"कमंडलु धारण करने वाली हे ब्रह्माणी, हंस की सवारी करने वाली ! त्रिशूल, चंद्रमा तथा सर्प धारण करने वाली माहेश्वरी, बैल पर सवारी करने वाली, महाशक्ति हे कुमारी, मयूर वाहिनी शंख, चक्र, गदा और पद्म, श्रृंग और अनेक महा अस्त्रों को धारण करने वाली, हे वैष्णवी प्रसन्न हों। हे नारायणी, आपको प्रणाम है। हाथी पर सवार और वज्र हाथ में लिए हे इंद्राणी! आपको प्रणाम है।

“हे नारायणी आपको प्रणाम है। नृसिंह के भयंकर रूप में और वराह के रूप में बड़ी सी थूथन वाली हे नारायणी आपको प्रणाम है। उस देवी को प्रणाम है जिसने शिवदूती और काली के समान अनेक रूप धरे। हे भयंकर मुखमंडल वाली, हे नारायणी, आपको प्रणाम है। हे लक्ष्मी! हे काली! हे सरस्वती! हमारी रक्षा करो। हे दुर्गा, हे नारायणी, आपको प्रणाम है। आपका त्रिशूल, चक्र, घंटा, शंख, तलवार, जिसने चंड, मुंड, शुंभ, निशुंभ का नाश किया, वे हमारी रक्षा करें। हे नारायणी! आपको प्रणाम है।

"हे देवी! आप सभी रोगों का पूर्ण नाश करने वाली हैं। जब आप प्रसन्न होती हैं, तो आपसे जो भी माँगा जाता है, वह प्रदान करती हैं। जो आपमें शरण लेते हैं, उनकी कोई इच्छा शेष नहीं रहती। वे वास्तव में आपमें आश्रय प्राप्त करते हैं। जब यहाँ दुर्गुण होते हैं, जब भी यहाँ राक्षस होते हैं, जब यहाँ अधर्म की शक्तियाँ होती हैं, तो आप स्वयं को प्रगट करती हैं और उनका नाश करती हैं। हे देवी! आप प्रसन्न हों और हमारी रक्षा करें। जगत के पाप शीघ्र कम हो जायें। हे पूजनीय देवी! आपके चरणों में स्थित हम देवताओं के ऊपर दया करें।"

देवी ने कहा, “मैं आपको वरदान देना चाहती हूँ। हे देवता गण, आप कोई भी एक वरदान माँग लें। मैं वह आपको प्रदान करूंगी।" देवताओं ने कहा, "आपने सब-कुछ किया है। बस आप इतनी कृपा करें कि हमारे सभी शत्रुओं का नाश हो जाए।"

देवी ने कहा, "वैष्णव मन्वंतर में अट्ठाइसवें द्वापर युग में, मैं नंद गोप के घर यशोदा के गर्भ से जन्म लूँगी और एक बार और शुंभ-निशुंभ का नाश करूँगी जो विंध्य पर्वत में मेरे शत्रु के रूप में पुनः जन्म लेंगे। मैं अपना निवास विंध्य पर्वत में बनाऊँगी और उनका नाश करूँगी। मैं एक भयंकर रूप धारण करूँगी और सभी दुष्ट राक्षसों को मार दूंगी। मैं उन्हें खा जाऊँगी और उनका रक्त पी जाऊँगी, जिसके कारण मेरे दाँत लाल हो जाएंगे और मुझे देवता और मनुष्य रक्तदंतिका कह कर पुकारेंगे।

'जब सर्वत्र अकाल होगा और पृथ्वी के ऊपर सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होगी तो पुनः मेरा आवाहन ऋषियों द्वारा किया जाएगा। तब मैं उनके दुःख दूर करने के लिए जन्म लूँगी। मैं उन्हें सौ आँखों से देखूंगी और वे मुझे शताक्षी कह कर पुकारेंगे।

"मैं संपूर्ण जगत का पेट मक्का और भोजन से भरूँगी, तब मुझे शाकम्भरी कह कर पुकारा जाएगा।

“मैं एक राक्षस दुर्गम का नाश करूँगी, तब मुझे दुर्गा कह कर पुकारा जाएगा।

"एक बार पुनः मैं हिमालय पर्वत में भयंकर रूप धरूँगी और ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों को भयभीत करूँगी, तब मुझे भीमादेवी कह कर पुकारा जाएगा।

"जब अरुण नामक राक्षस जगत के लोगों को सताएगा, तब मैं भयंकर मक्खी का रूप धर कर उनका नाश करूँगी। तब मुझे भ्रामरी की भाँति पूजा जाएगा। “इस प्रकार जब कभी भी कोई कठिनाई हुई, जब-जब राक्षसों का जन्म होने लगा, तब और वहाँ मैं स्वयं को प्रगट करके पृथ्वी पर शांति लाती हूँ।”

द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

'ॐ' देव्युवाच ।। १ ।।

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४ ॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥५॥

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥६॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७।।

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८ ॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यनित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ।।९।।

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ||१० ||

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ।। ११ ।।

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ।।१२।।

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ।।१३।।
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ||१४||

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ।।१५ ।।

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ।।१६ ।।

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ।।१७।।

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ।। १८ ।।

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ।।१९।।

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।।२० ।।

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ।।२१ ।।

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ।।२२ ।।

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।।२३ ।।

तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।।२४ ।।

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ।। २५ ।।

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ।।२६ ।।

राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ।।२७ ।।

पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।।२८ ॥

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ।।२९ ।।

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ।।३० ॥

ऋषिरुवाच ॥३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ।।३२।।

पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातंका स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रैऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ।।३५ ॥

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ।। ३६ ।।

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८ ।।

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ।।३९ ॥

भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ।।४० ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ।। ४१ ।।
।।ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

द्वादश अध्याय

देवी ने पुनः कहा, "जो भी उपरोक्त स्तोत्रों के द्वारा मेरी प्रार्थना करेगा, मैं उसके कल्याण का ध्यान रखूँगी और उसके सभी कष्टों को दूर कर दूंगी। जो भी मधु कैटभ, शुभ और निशुंभ के नाश की मेरी महिमा की कहानियों का श्रवण करेगा, उन्हें कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। उनके पास कभी भी गरीबी नहीं आएगी। उनको शत्रु अथवा राजा से कोई भय नहीं रहेगा। उन्हें अस्त्र, अग्नि और वर्षा से किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। इसलिए मेरी इन कथाओं का सभी को नित्य पाठ करना चाहिए। इसका सभी को नित्य श्रवण करना चाहिए। यह महान फलदायक है। मेरे माहात्म्य से बड़े से बड़े पापों का नाश जाता है। मेरी महिमा के गान से त्रितापों का शमन होता है। जहाँ भी मेरी महिमा का गान होता है तथा जहाँ भी मेरी भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है, वहाँ मैं सदा निवास करती हूँ। शरद ऋतु में मेरी पूजा भक्तिपूर्वक की जाती है, क्योंकि यह मुझे बड़ी ही प्रिय है। पूजा के समय मेरी इन कथाओं का श्रवण किया जाना चाहिए। ऐसा करने से सभी समृद्धिशाली और शांतिपूर्ण रहेंगे। राजाओं को युद्ध में विजय प्राप्त होगी और उनके शत्रुओं का नाश होगा। सर्वत्र आनंद और शांति होगी। जो परिवार सदा मेरी महिमा का गान करेगा, वह सदा समृद्धि और शांति से पूर्ण होगा। जो सदा मेरे भक्तों की रक्षा हेतु तत्पर रहेगा, उसके सभी रोग और चिंताऐं मेरे द्वारा हर ली जाऐंगी। मेरे भक्तों को कभी दुःस्वप्न नहीं आयेंगे और उन्हें राक्षसों तथा प्रेतों से कोई भी कष्ट नहीं होगा। मेरे माहात्म्य से सम्बंधित कहानियों के पाठ से कष्ट समाप्त हो जाऐंगे। मेरा यह माहात्म्य ही सब कुछ है। पुष्पों तथा चंदन से विधिपूर्वक मेरी पूजा करने के उपरांत ब्राह्मणों को भोजन कराया जाना चाहिए। मेरे मन्त्र तथा महिमा के साथ हवन किया जाना चाहिए और दान किया जाना चाहिए। मेरी पूजा तथा ब्राह्मण भोजन आनंदपूर्वक कराया जाना चाहिए। मैं इससे अपने भक्तों से बड़ी ही शीघ्र प्रसन्न हो जाती हूँ।

"मेरी शक्ति सभी रोगों का नाश करती है और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है। यह पाठ करने वाले की रक्षा करती है और शांति का संरक्षण करती है। मेरे जन्म तथा कार्यों का गान जो कि पूर्व में ब्रह्मा और ऋषियों ने भी किया है, जैसा आप सभी ने भी गाया, वह आस्थावान और समर्पित भक्त को स्वास्थ्य, शांति और आनंद प्रदान करता है। मेरे स्मरण मात्र से व्यक्ति कठिनाइयों तथा दुःखों को पार कर लेता है। मेरी शक्ति के कारण सभी शत्रु और दुष्ट पशु मेरे भक्त के पास से दूर भाग जाते हैं।"

ऋषि ने कहा : इतना कहते ही देवी तत्क्षण अदृश्य हो गई। देवता स्वर्ग पर शासन करने लगे और यज्ञ का भाग पाने लगे तथा सदा प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे। सभी असुर अपनी शक्ति

खोने के बाद भयभीत हो कर पाताल में भाग गये और वहाँ बेचैन रहने लगे। हे राजन! इस प्रकार देवी पृथ्वी पर धर्म की स्थापना हेतु स्वयं को प्रगट करती हैं और अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। वे समस्त जगत को मोहित करती हैं और माँ की भाँति जगत पर नियन्त्रण करती हैं। हे राजन! यह संपूर्ण जगत उस महादेवी द्वारा व्याप्त है। वह महाशक्ति इस संपूर्ण विश्व का सृजन करती है और वह स्वयं ही संसार के दुःख और प्रसन्नता का कारण है।

त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥२॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥३॥

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥४ ॥

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच ||६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥७||

प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥८ ॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ||९||

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ।।१०।।

अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ।।११ ।।

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ।।१२ ।।

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ।।१३।।

देव्युवाच ।।१४।।

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ।।१५ ।।

मार्कण्डेय उवाच ॥। १६ ।।

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ।।१७।।

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ।। १८ ।।

देव्युवाच ।। १९ ।।

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥२०॥

हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ।।२१ ।।

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ।। २२ ।।

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ।।२३ ।।

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ||२४||

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ।।२५ ।।

मार्कण्डेय उवाच ।। २६ ।

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ।।२७।।

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।। २८ ।।

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।।२९ ।।

एवं देव्या वरं लब्धवा सुरथः क्षत्रियर्षभः
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।।३०।।

।। क्लीं ॐ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

त्रयोदश अध्याय

ऋषि कहते हैं : इस प्रकार मैंने देवी के माहात्म्य की सभी कथाओं का वर्णन किया। वह विद्या अथवा विष्णु शक्ति का बुद्धिमूल अथवा माया है तथा वह ही अविद्या है और वह ही दोनों है। उसके ही द्वारा तुम और यह वैश्य मोहित हुए हो तथा अन्य सभी भी इसी प्रकार मोहित होते हैं। हे राजन! तुम उन्हीं भगवती की शरण में जाओ, जो सुख करने वाली हैं। की दाता हैं तथा साथ ही अपने भक्तों को स्वर्ग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है ।

मार्कंडेय ऋषि ने कहा : मुनि के इन वचनों को सुन कर राजा सुरथ का ह्रदय परिवर्तन हो गया और वे तत्काल कठोर तप करने के लिए घने वन में चले गए। | वैश्य ने भी उनका अनुकरण किया और निरंतर देवी सूक्त का पाठ करते हुए वे दोनों नदी के तट पर कठोर तपस्या करने लगे। राजा सुरथ अपना राज्य और संपत्ति पुनः प्राप्त करने के लिए देवी के दर्शन करना चाहते थे। उन दोनों ने देवी की षोडशोपचार पूजा के लिए नदी के किनारे की मिट्टी से देवी की प्रतिमा का निर्माण किया। दोनों ने ही अपने मन को देवी के ऊपर एकाग्र किया। तीन वर्षों तक कठोर तपस्या करने पर देवी प्रसन्न हुई और उनके सामने प्रगट हो कर बोलीं, "तुम क्या चाहते हो, कहो। मैं तुम दोनों से प्रसन्न हूँ। वरदान माँगो, मैं तुम्हें कुछ भी देने के लिए तैयार हूँ।"

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा : राजा ने देवी से अपना खोया हुआ राज्य वापस माँगा। लेकिन वैश्य ने देवी से ज्ञान के सिवा कुछ नहीं माँगा।

देवी ने कहा, "कुछ दिनों के पश्चात तुम्हें तुम्हारा राज्य वापस मिल जाएगा। तुम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे और प्रसन्नतापूर्वक राज्य करोगे। | मृत्यु के उपरांत तुम सूर्य के अंश द्वारा आठवें मनु के रूप में जन्म लोगे और सावर्णि के नाम से विख्यात होगे और वैश्य तुम्हारी इच्छानुसार मैं तुम्हें ज्ञान प्रदान करती हूँ।"

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा : इस प्रकार उन दोनों को वरदान दे कर देवी अदृश्य हो गई। देवी से वरदान प्राप्त करके राजा सुरथ ने अगले जन्म में सूर्य देव के अंश से जन्म लिया और सावर्णि के नाम से विख्यात हुए।

यह देवी दुर्गा का माहात्म्य था।

क्षमा-प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ।।१ ।।

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥२ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्ण तदस्तु मे ॥३॥

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥४ ॥

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु॥५॥

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥६॥

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥७।।

गुह्यातिगुह्यगोत्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥८ ॥

।। श्रीदुर्गार्पणमस्तु ।।

क्षमा-प्रार्थना

दुर्गा सप्तसती के पाठ में जाने-अनजाने हुई भूलों के लिए पाठ के अन्त में की जाने वाली प्रार्थना ।

ॐ

श्री देव्यष्टोत्तरशतनामावलिः

१. ॐ आदिशक्तये नमः
२. ॐ महादेव्यै नमः
३. ॐ अम्बिकायै नमः
४. ॐ परमेश्वर्यै नमः
५. ॐ ईश्वर्यै नमः
६. ॐ अनीश्वर्यै नमः
७. ॐ योगिन्यै नमः
८. ॐ सर्वभूतेश्वर्यै नमः
९. ॐ जयायै नमः
१०. ॐ विजयायै नमः
११. ॐ जयन्त्यै नमः
१२. ॐ शाम्भव्यै नमः
१३. ॐ शान्त्यै नमः
१४. ॐ ब्राह्मयै नमः
१५. ॐ ब्रह्माण्डधारिण्यै नमः
१६. ॐ महारूपायै नमः
१७. ॐ महामायायै नमः
१८. ॐ माहेश्वर्यै नमः
१९. ॐ लोकरक्षिण्यै नमः
२०. ॐ दुर्गायै नमः
२१. ॐ दुर्गपारायै नमः
२२. ॐ भक्तचिन्तामण्यै नमः
२३. ॐ मृत्यै नमः
२४. ॐ सिद्धयै नमः
२५. ॐ मूर्त्यै नमः
२६. ॐ सर्वसिद्धिप्रदायै नमः
२७. ॐ मन्त्रमूर्त्यै नमः
२८. ॐ महाकाल्यै नमः
२९. ॐ सर्वमूर्तिस्वरूपिण्यै नमः
३०. ॐ वेदमूर्त्यै नमः'
३१. ॐ वेदभूत्यै नमः
३२. ॐ वेदान्तायै नमः
३३. ॐ व्यवहारिण्यै नमः
३४. ॐ अनघायै नमः
३५. ॐ भगवत्यै नमः
३६. ॐ रौद्रायै नमः
३७. ॐ रुद्रस्वरूपिण्यै नमः
३८. ॐ नारायण्यै नमः
३९. ॐ नारसिंह्यै नमः
४०. ॐ नागयज्ञोपवीतिन्यै नमः
४१. ॐ शंखचक्रगदाधारिण्यै नमः
४२. ॐ जटामुकुटशोभिन्यै नमः
४३. ॐ अप्रमाणायै नमः
४४. ॐ प्रमाणायै नमः

४५. ॐ आदिमध्यावसानायै नमः
४६. ॐ पुण्यदायै नमः
४७. ॐ पुण्योपचारिण्यै नमः
४८. ॐ पुण्यकीर्त्यै नमः
४९. ॐ स्तुतायै नमः
५०. ॐ विशालाक्ष्यै नमः
५१. ॐ गम्भीरायै नमः
५२. ॐ रूपान्वितायै नमः
५३. ॐ कालरात्र्यै नमः
५४. ॐ अनल्पसिद्ध्यै नमः
५५. ॐ कमलायै नमः
५६. ॐ पद्मवासिन्यै नमः
५७. ॐ महासरस्वत्यै नमः
५८. ॐ मनःसिद्धायै नमः
५९. ॐ मनोयोगिन्यै नमः
६०. ॐ मातङ्गिन्यै नमः
६१. ॐ चण्डमुण्डचारिण्यै नमः
६२. ॐ दैत्यदानवनाशिन्यै नमः
६३. ॐ मेषज्योतिषायै नमः
६४. ॐ परंज्योतिषायै नमः
६५. ॐ आत्मज्योतिषायै नमः
६६. ॐ सर्वज्योतिस्वरूपिण्यै नमः
६७. ॐ सहस्रमूर्त्यै नमः
६८. ॐ शर्वाण्यै नमः
६९. ॐ सूर्यमूर्तिस्वरूपिण्यै नमः
७०. ॐ आयुर्लक्ष्म्यै नमः
७१. ॐ विद्यालक्ष्म्यै नमः
७२. ॐ सर्वलक्ष्मीप्रदायै नमः
७३. ॐ विचक्षणायै नमः
७४. ॐ क्षीरार्णववासिन्यै नमः
७५. ॐ वागीश्वर्यै नमः
७६. ॐ वाक्सिद्ध्यै नमः
७७. ॐ अज्ञानज्ञानगोचरायै नमः
७८. ॐ बलायै नमः
७९. ॐ परमकल्याण्यै नमः
८०. ॐ भानुमण्डलवासिन्यै नमः
८१. ॐ अव्यक्तायै नमः
८२. ॐ व्यक्तरूपायै नमः
८३. ॐ अव्यक्तरूपायै नमः
८४. ॐ अनन्तायै नमः
८५. ॐ चन्द्रायै नमः
८६. ॐ चन्द्रमण्डलवासिन्यै नमः
८७. ॐ चन्द्रमण्डलमण्डितायै नमः
८८. ॐ भैरव्यै नमः
८९. ॐ परमानन्दायै नमः
९०. ॐ शिवायै नमः
९१. ॐ अपराजितायै नमः
९२. ॐ ज्ञानप्राप्त्यै नमः

९३. ॐ ज्ञानवत्यै नमः
९४. ॐ ज्ञानमूर्त्यै नमः
९५. ॐ कलावत्यै नमः
९६. ॐ श्मशानवासिन्यै नमः
९७. ॐ मात्रे नमः
९८. ॐ परमकल्पिन्यै नमः
९९. ॐ घोषवत्यै नमः
१००. ॐ दारिद्र्यहारिण्यै नमः
१०१. ॐ शिवतेजोमुख्यै नमः
१०२. ॐ विष्णुवल्लभायै नमः
१०३. ॐ केशविभूषितायै नमः
१०४. ॐ कूर्मायै नमः
१०५. ॐ महिषासुरघातिन्यै नमः
१०६. ॐ सर्वरक्षायै नमः
१०७. ॐ महाकाल्यै नमः
१०८. ॐ महालक्ष्म्यै नमः

इति श्रीदेव्यष्टोत्तरशतनामावलिः ।

ॐ

श्रीलक्ष्म्यष्टोत्तरशतनामावलिः

१. ॐ प्रकृत्यै नमः
२. ॐ विकृत्यै नमः
३. ॐ विद्यायै नमः
४. ॐ सर्वभूतहितप्रदायै नमः
५. ॐ श्रद्धायै नमः
६. ॐ विभूत्यै नमः
७. ॐ सुरभ्यै नमः
८. ॐ परमात्मिकायै नमः
९. ॐ वाचे नमः
१०. ॐ पद्मालयायै नमः
११. ॐ पद्मायै नमः
१२. ॐ शुचये नमः
१३. ॐ स्वाहायै नमः
१४. ॐ स्वधायै नमः
१५. ॐ सुधायै नमः
१६. ॐ धन्यायै नमः
१७. ॐ हिरण्मय्यै नमः
१८. ॐ लक्ष्म्यै नमः
१९. ॐ नित्यपुष्टायै नमः
२०. ॐ विभावर्यै नमः
२१. ॐ अदित्यै नमः
२२. ॐ दित्यै नमः
२३. ॐ दीप्तायै नमः
२४. ॐ वसुधायै नमः
२५. ॐ वसुधारिण्यै नमः
२६. ॐ कमलायै नमः
२७. ॐ कान्तायै नमः
२८. ॐ कामाक्ष्यै नमः
२९. ॐ क्रोधसंभवायै नमः
३०. ॐ अनुग्रहप्रदायै नमः
३१. ॐ बुद्धये नमः
३२. ॐ अनघायै नमः
३३. ॐ हरिवल्लभायै नमः
३४. ॐ अशोकायै नमः
३५. ॐ अमृतायै नमः
३६. ॐ दीप्तायै नमः
३७. ॐ लोकशोकविनाशिन्यै नमः
३८. ॐ धर्मनिलयायै नमः
३९. ॐ करुणायै नमः
४०. ॐ लोकमात्रे नमः
४१. ॐ पद्मप्रियायै नमः
४२. ॐ पद्महस्तायै नमः
४३. ॐ पद्माक्ष्यै नमः
४४. ॐ पद्मसुन्दर्यै नमः
४५. ॐ पद्मोद्भवायै नमः
४६. ॐ पद्ममुख्यै नमः
४७. ॐ पद्मनाभप्रियायै नमः
४८. ॐ रमायै नमः
६७. ॐ शिवकर्यै नमः
६८. ॐ सत्यै नमः
६९. ॐ विमलायै नमः
७०. ॐ विश्वजनन्यै नमः
७१. ॐ पुष्ट्यै नमः
७२. ॐ दारिद्र्यनाशिन्यै नमः

४९. ॐ पद्ममालाधरायै नमः
५०. ॐ देव्यै नमः
५१. ॐ पद्मिन्यै नमः
५२. ॐ पद्मगन्धिन्यै नमः
५३. ॐ पुण्यगन्धायै नमः
५४. ॐ सुप्रसन्नायै नमः
५५. ॐ प्रसादाभिमुख्यै नमः
५६. ॐ प्रभायै नमः
५७. ॐ चन्द्रवदनायै नमः
५८. ॐ चन्द्रायै नमः
५९. ॐ चन्द्रसहोदर्यै नमः
६०. ॐ चतुर्भुजायै नमः
६१. ॐ चन्द्ररूपायै नमः
६२. ॐ इन्दिरायै नमः
६३. ॐ इन्दुशीतलायै नमः
६४. ॐ आह्लादजनन्यै नमः
६५. ॐ पुष्ट्यै नमः
६६. ॐ शिवायै नमः
७३. ॐ प्रीतिपुष्करिण्यै नमः
७४. ॐ शान्तायै नमः
७५. ॐ शुक्लमाल्याम्बरायै नमः
७६. ॐ श्रियै नमः
७७. ॐ भास्कर्यै नमः
७८. ॐ बिल्वनिलयायै नमः
७९. ॐ वरारोहायै नमः
८०. ॐ यशस्विन्यै नमः
८१. ॐ वसुन्धरायै नमः
८२. ॐ उदाराङ्गायै नमः
८३. ॐ हरिण्यै नमः
८४. ॐ हेममालिन्यै नमः
८५. ॐ धनधान्यकर्यै नमः
८६. ॐ सिद्धयै नमः
८७. ॐ स्त्रैणसौम्यायै नमः
८८. ॐ शुभप्रदायै नमः
८९. ॐ नृपवेश्मगतानन्दायै नमः
९०. ॐ वरलक्ष्म्यै नमः

९१. ॐ वसुप्रदायै नमः

९२. ॐ शुभायै नमः

९३. ॐ हिरण्यप्राकारायै नमः

९४. ॐ समुद्रतनयायै नमः

९५. ॐ जयायै नमः

९६. ॐ मङ्गलायै देव्यै नमः

९७. ॐ विष्णुवक्षस्थलस्थितायै नमः

९८. ॐ विष्णुपत्न्यै नमः

९९. ॐ प्रसन्नाक्ष्यै नमः

१००. ॐ नारायणसमाश्रितायै नमः

१०१. ॐ दारिद्र्यध्वंसिन्यै नमः

१०२. ॐ देव्यै नमः

१०३. ॐ सर्वोपद्रववारिण्यै नमः

१०४. ॐ नवदुर्गायै नमः

१०५. ॐ महाकाल्यै नमः

१०६. ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकायै नमः

१०७. ॐ त्रिकालज्ञानसंपन्नायै नमः

१०८. ॐ भुवनेश्वर्यै नमः

इति श्रीलक्ष्म्यष्टोत्तरशतनामावलिः ।

ॐ

श्रीसरस्वत्यष्टोत्तरशतनामावलिः

१. ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः
२. ॐ महामायायै नमः
३. ॐ वरप्रदायै नमः
४. ॐ श्रीप्रदायै नमः
५. ॐ पद्मनिलयायै नमः
६. ॐ पद्माक्ष्यै नमः
७. ॐ पद्मवक्त्रायै नमः
८. ॐ शिवानुजायै नमः
९. ॐ पुस्तकहस्तायै नमः
१०. ॐ ज्ञानमुद्रायै नमः
११. ॐ रमायै नमः
१२. ॐ कामरूपिण्यै नमः
१३. ॐ महाविद्यायै नमः
१४. ॐ महापातकनाशिन्यै नमः
१५. ॐ महाश्रयायै नमः
१६. ॐ मालिन्यै नमः
१७. ॐ महाभोगायै नमः
१८. ॐ महाभुजायै नमः
१९. ॐ महाभायै नमः
२०. ॐ महोत्साहायै नमः
२१. ॐ दिव्याङ्गयै नमः
२२. ॐ सुरवन्दितायै नमः
२३. ॐ महाकाल्यै नमः
२४. ॐ महापाशायै नमः
२५. ॐ महाकारायै नमः
२६. ॐ महांकुशायै नमः
२७. ॐ पीतायै नमः
२८. ॐ विमलायै नमः
२९. ॐ विश्वायै नमः
३०. ॐ विद्युन्मालायै नमः
३१. ॐ वैष्णव्यै नमः
३२. ॐ चन्द्रिकायै नमः
३३. ॐ चन्द्रलेखाविभूषितायै नमः
३४. ॐ सावित्र्यै नमः
३५. ॐ सुरसायै नमः
३६. ॐ देव्यै नमः
३७. ॐ दिव्यालंकारभूषितायै नमः
३८. ॐ वाग्देव्यै नमः
३९. ॐ वसुदायै नमः
४०. ॐ तीव्रायै नमः
४१. ॐ महाभद्रायै नमः
४२. ॐ महाबलायै नमः

४३. ॐ भोगदायै नमः
४४. ॐ भारत्यै नमः
४५. ॐ भामायै नमः
४६. ॐ गोविन्दायै नमः
४७. ॐ गोमत्यै नमः
४८. ॐ जटिलायै नमः
४९. ॐ विन्ध्यावासायै नमः
५०. ॐ चण्डिकायै नमः
५१. ॐ ब्राह्मयै नमः
५२. ॐ ब्रह्मज्ञानैकसाधनायै नमः
५३. ॐ सौदामिन्यै नमः
५४. ॐ सुधामूर्त्यै नमः
५५. ॐ सुभद्रायै नमः
५६. ॐ सुरपूजितायै नमः
५७. ॐ सुवासिन्यै नमः
५८. ॐ सुनासायै नमः
५९. ॐ विनिद्रायै नमः
६०. ॐ पद्मलोचनायै नमः
६१. ॐ विद्यारूपायै नमः
६२. ॐ विशालाक्ष्यै नमः
६३. ॐ ब्रह्मजायायै नमः
६४. ॐ महाबलायै नमः
६५. ॐ त्रयीमूर्तये नमः
६६. ॐ त्रिकालज्ञायै नमः
६७. ॐ त्रिगुणायै नमः
६८. ॐ शास्त्ररूपिण्यै नमः
६९. ॐ शुम्भासुरप्रमथिन्यै नमः
७०. ॐ शुभदायै नमः
७१. ॐ सर्वात्मिकायै नमः
७२. ॐ रक्तबीजनिहन्त्र्यै नमः
७३. ॐ चामुण्डायै नमः
७४. ॐ अम्बिकायै नमः
७५. ॐ मुण्डकायप्रहरणायै नमः
७६. ॐ धूम्रलोचनमर्दनायै नमः
७७. ॐ सर्वदेवस्तुतायै नमः
७८. ॐ सौम्यायै नमः
७९. ॐ सुरासुरनमस्कृतायै नमः
८०. ॐ कालरात्र्यै नमः
८१. ॐ कलाधरायै नमः
८२. ॐ वाग्देव्यै नमः
८३. ॐ वरारोहायै नमः
८४. ॐ वाराही नमः
८५. ॐ वारिजासनायै नमः
८६. ॐ चित्राम्बरायै नमः
८७. ॐ चित्रगन्धायै नमः
८८. ॐ चित्रमाल्यविभूषितायै नमः
८९. ॐ कान्तायै नमः
९०. ॐ कामप्रदायै नमः

९१. ॐ वन्द्यायै नमः	१००. ॐ चतुर्वर्गफलप्रदायै नमः
९२. ॐ रूपसौभाग्यदायिन्यै नमः	१०१. ॐ हंसासनायै नमः
९३. ॐ श्वेताननायै नमः	१०२. ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकायै नमः
९४. ॐ सुभुजायै नमः	१०३. ॐ विन्ध्याचलविराजितायै नमः
९५. ॐ श्वेतस्तनसुपूजितायै नमः	१०४. ॐ परायै नमः
९६. ॐ रक्तमध्यायै नमः	१०५. ॐ स्वरात्मिकायै नमः
९७. ॐ नीलजङ्घायै नमः	१०६. ॐ चन्द्रवदनायै नमः
९८. ॐ निरञ्जनायै नमः	१०७. ॐ शिवायै नमः
९९. ॐ चतुराननसाम्राज्यायै नमः	१०८. ॐ सरस्वत्यै नमः

इति श्रीसरस्वत्यष्टोत्तरशतनामावलिः ।

श्री स्वामी शिवानन्द जी के नवरात्रि संदेश

दशहरा संदेश (१९४२)

श्री दुर्गा देवी को प्रणाम, देवी माँ जो बुद्धि, करुणा और सौंदर्य के रूप में सभी प्राणियों में विद्यमान हैं, जो भगवान् की संगिनी हैं, जो विश्व का सृजन, पोषण और नाश करती हैं।

देवी दुर्गा भगवान् की ईश्वर के रूप में देवी के रूप में बड़ा त्योहार है।

वे भगवान् का शक्ति रूप हैं। बिना दुर्गा के शिव की कोई अभिव्यक्ति नहीं है। बिना शिव के दुर्गा का कोई अस्तित्व नहीं है। शिव दुर्गा की आत्मा है। दुर्गा शिव के साथ अभिन्न है। वे भगवान् शिव ही एकमात्र मौन साक्षी हैं। वे निश्चल और बिलकुल अपरिवर्तनीय हैं। वे ब्रह्मांड की लीला से बिलकुल भी प्रभावित नहीं होते हैं। दुर्गा ही सब-कुछ करती हैं।

माँ की पूजा देवी माँ श्री माता के रूप में ईश्वर की पूजा है। वे शक्ति या दैवी शक्ति है। देवी माँ उसके देवी के रूप में उसके दस हाथों में अस्त्र लिए प्रस्तुत की जाती है। वे शेर पर सवार हैं। वे तीनों गुणों के द्वारा सत्व, रज और तम के द्वारा भगवान् की लीला चलाती रहती हैं। विद्या, शांति, वासना, क्रोध, लोभ, अहंकार, स्वार्थ, सभी उनके ही रूप हैं।

देवी अथवा जगन्माता की उपासना आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करती है। केनोपनिषद् की कहानी जिसे यक्ष प्रश्न कहते हैं, इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है। उमा ने देवताओं को सत्य का ज्ञान दिया। देवी शक्ति अपने भक्तों को ज्ञान प्रदान करती है।

एक बच्चा अपने पिता की अपेक्षा माँ से अधिक प्रेम करता है, क्योंकि वह बड़ी ही दयालु, प्रेमल, कोमल, आकर्षक होती है तथा वह बच्चे की आवश्यकताओं का ध्यान रखती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधक अथवा भक्त–जो कि आध्यात्मिक बालक है, उसकी माँ दुर्गा से पिता शिव की अपेक्षा अधिक अन्तरंगता होती है। इसलिए साधक को माँ के पास पहले जाना चाहिए, फिर वे अपने आध्यात्मिक बालक का परिचय ज्ञान अथवा आत्म-साक्षात्कार हेतु उसके पिता शिव से कराएंगी।

माँ की महिमा अपार है। उनकी करुणा असीम है। उनका ज्ञान अनंत है। उनकी शक्ति अपरिमित है। उनकी महिमा अवर्णनीय है। उनका वैभव अवर्णनीय है। वह आपको भक्ति और मुक्ति प्रदान करेंगी।

उनके पास खुले हृदय से जाऐं। उनके समक्ष अपना हृदय उन्मुक्तता और विनम्रता से खोल दें। एक बालक की भाँति सरल रहें। अहंकार, धूर्तता, स्वार्थता तथा कुटिलता को त्याग दें। पूर्ण निःशर्त समर्पण करें। उनकी प्रार्थना करें। उनके नाम गाऐं। आस्था और भक्ति के साथ उनकी पूजा करें। नवरात्रि के दिनों में विशेष पूजा करें। नवरात्रि अथवा दशहरा कठोर साधना हेतु सर्वश्रेष्ठ समय है। ये नौ दिन देवी की पूजा के लिए अत्युत्तम हैं। उनकी आराधना में लीन हो जाऐं। अनुष्ठान करें। देवी ने नौ दिन और नौ रात तक भद्रासुर और उनकी शक्तियों से युद्ध किया। यह युद्ध दसवें दिन समाप्त हुआ जिसे दशहरा अथवा विजय का दिन कहा जाता है। विजयादशमी के दिन बालकों को अक्षर अभ्यास कराया जाता है। साधकों को इस दिन दीक्षा दी जाती है। किसी भी विद्या को प्रारंभ करने के लिए यह सर्वश्रेष्ठ दिन है। यह वह दिन है जब अर्जुन ने कुरुक्षेत्र में कौरवों से युद्ध करने के पूर्व देवी की पूजा की थी।

देवी दुर्गा अपने बच्चों को दैवी ज्ञान का दुग्ध प्रदान करें और उन्हें दैवी वैभव और यश की विशाल ऊँचाइयों, कैवल्य तथा अनंत सूर्य के प्रकाश की अविनाशी अवस्था तक उठाएँ ।

माताओं के लिए स्वामी शिवानन्द जी का एक संदेश (१९४५)

प्रिय अमर आत्माओ,

आज के दिन आप सभी मंदिरों में देवी माँ के प्रति समर्पित हो कर दशहरा मनाने के लिए एकत्र हुए हैं। यह उत्सव भारतवर्ष के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार मनाया जाता है। लेकिन इस उत्सव को मनाने का मुख्य लक्ष्य है, देवी को आपको से संपत्ति, सौभाग्य, समृद्धि, विद्या तथा अन्य सिद्धियाँ प्रदान करने के लिए प्रसन्न करना। आप में से कोई भी जो भी विशेष प्रार्थना देवी के समक्ष करता है, आप जो भी वरदान देवी से माँगते हैं, उन सभी के पीछे एक ही उद्देश्य है आराधना करना और स्वयं को उनसे जोड़ना, इसके सिवा अन्य कोई भी उद्देश्य नहीं है। यह ही जाने अथवा अनजाने किया जाता है। प्रत्येक उनके करुणामय प्रेम का वरदान प्राप्त करता है और उसकी रक्षा होती है।

आपका यह अनूठा लक्ष्य इस विशेष अवसर पर ही नहीं होता वरन यह आपके जीवन के प्रत्येक क्षण में होता है। आपके भीतर निरंतर संघर्ष चल रहा है। अन्तरात्मा विभिन्न इंद्रियों के जाल से ढंकी होने तथा उनसे दबी होने के कारण यह उनके फंदे से बचने के लिए संघर्ष कर रही है। यह आपको इस आत्मा की परमात्मा से पहचान हेतु निरंतर चेतावनी दे रही है। यह आपको स्मरण कराती है कि आप जहाँ से चले थे, उस स्थान की वापसी यात्रा पर हैं। चाहे आपकी इच्छा हो या नहीं आपके पास इसके सिवा अन्य कोई स्थान है ही नहीं। आपको अपना रास्ता खोजना होगा। अन्य किसी भी स्थान पर आप पलक झपकने से अधिक देर तक नहीं रुक सकते हैं। जितनी अधिक आपकी गति तीव्र होगी, उतना ही अधिक आप अपने लक्ष्य पर शीघ्र पहुँचेंगे। इसलिए उचित युक्ति खोजें और आगे बढ़ें। एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाऐं। अपने जीवन में बढ़ना और इसके विभिन्न पहलू अन्यों से उसी प्रकार भिन्न हो सकते हैं, जिस प्रकार आप जो देवी से वरदान माँगते हैं, वह अन्य जो वरदान माँगते हैं उससे भिन्न होता है। किंतु दोनों का दृष्टिकोण एक है और विभिन्न जीवनों का दृष्टिकोण भिन्न भी है। संसार में प्रत्येक मोक्ष की आकांक्षा रखता है।

एक गेंद को भूमि पर पटकिए। यह पुनः वापस आती है। यह उसी बिंदु पर पुनः पहुँचना चाहती है जहाँ से यह फेंकी गयी थी। लेकिन एक गेंद की वापसी तथा दूसरी गेंद की वापसी में अन्तर होता है। एक मोटे खोल वाली और पूरी तरह हवा से भरी हुई गेंद अत्यंत शीघ्र वापस आ जाती है, जबकि एक जापानी गेंद वापस आने में अधिक समय लेती है। ऐसा क्यों? क्योंकि बाद वाली गेंद में पर्याप्त गति नहीं होती। जैसे ही यह भूमि तक पहुँचती है, यह अपना गोल आकार खो देती है। इसका आकार बिगड़ जाता है। इसके लिए बहुत अधिक बल की आवश्यकता होती है। यह सब कुछ खो बैठती है। यह धीरे-धीरे गति पकड़ती है।

हम सभी जापानी गेंद की भाँति हैं। हमको स्वयं को वैराग्य के आवरण से ढाँकना चाहिए। भक्ति और समर्पण की हवा भरना चाहिए। कीर्तन और प्रार्थना दो पिस्टन वाले पम्प हैं। ध्यान जाने के लिए आकाश है। ज्ञान वह स्थान है जो कि गेंद को इसके वास्तविक स्थान को वापस ले कर जाता है। यह नीचे की ओर खींचने वाले गुरुत्वाकर्षण बल अज्ञान पर विजय दिलाता है। निष्काम्य कर्म हमारे ऊपर और अहंकार और दुर्गुणों के रूप में चिपके धूल के कणों का उन्मूलन करता है। ये सभी साधन हैं। ये सभी जीवन के स्वयं के अनुभवों के द्वारा निर्मित होते हैं। लेकिन अधिक अच्छा है कि इन्हें अपने माता-पिता से प्राप्त किया जाए। इससे आप अधिक समय बचा पाऐंगे।

माता-पिता अपने बच्चों के हितैषी होते हैं। उनको अपने बच्चों को बुरी आदतों का अर्जन नहीं करने देना चाहिए। उन्हें अपने बच्चों को सिनेमा के गाने अथवा अन्य निरर्थक गीतों की लोरियाँ नहीं

सुनाना चाहिए। मात्र भगवान् के विभिन्न रूपों से संबंधित गीत ही सुनाना चाहिए। गाऐं, “हरि हरि बोल, बोल हरि बोल, मुकुंद माधव केशव बोल।” यह धुन बड़ी ही मधुर है। यह एक मधुर लोरी है। इसी के साथ ही यह बच्चे के मन पर गहरा प्रभाव डालती है। आप बालक के मन के बारे में नहीं जानते हैं। आप इसकी भाषा समझने में सक्षम नहीं हैं। बालक तो दैवी गुणों से पूर्ण होता है, मात्र आपकी बुरी संगत के कारण बालक बिगड़ता है। आप बच्चे की बहुत अधिक देखभाल करते हैं। आप बालक को सुख-सुविधाओं का प्रशिक्षण देते हैं। आप इन सभी चीजों को उसके बाद के जीवन में अनिवार्य बना देते हैं।

"जैसा पिता होगा वैसा ही बालक होगा।" जो भी आदतें आपके जीवन में होगी वह उसमें भी आ जाऐंगी। यदि आप ताश खेलते होंगे, तो आपका बेटा यदि आपके सामने नहीं ताश खेलेगा तो भी आपसे चोरी से जरूर ही खेलेगा। यदि आप धूम्रपान करते हैं तो आपका बेटा अवश्य ही धूम्रपान करेगा। सर्वप्रथम स्वयं को सुधारिए। जिस क्षण आपको ज्ञात हो कि आप एक बेटे के पिता बनने वाले हैं, सभी बुरी आदतों का उन्मूलन कर दीजिए। यदि खरपतवार हटा दी जाए तो बीज अवश्य ही उगेगा। बालक का जन्म आपके लिए ए. आर. पी. का सायरन है। यह आपको सावधान करने के लिए एक खतरनाक संकेत है।

मिट्टी का पात्र तब तक उपयोगी रहता है जब तक कि बीज में से जड़ न निकल आऐं। इसके पश्चात इसे पात्र में नहीं रखना चाहिए। यदि इसे तब भी पात्र में ही रखा रहने दिया जाएगा तो पौधे की वृद्धि में बाधा आएगी और पात्र भी टूट जाएगा। इसीलिए इसे तुरंत ही एक उर्वर भूमि में रोपित किया जाना चाहिए। बच्चे को भी तब तक घर में रखना चाहिए जब तक उसमें भले-बुरे की समझ न आ जाए। जिस दिन बच्चा पसंद-नापसंद की प्रवृत्ति दर्शाये, उस दिन उसे एक शिक्षक के पास ले जाना चाहिए और उसे सौंप देना चाहिए। अब वह बच्चा नहीं है अब वह किशोर है जो निर्देश ग्रहण करने के लिए तैयार है। कोई भी माता-पिता जो इस तथ्य से अज्ञान रहते हैं और उसे घर में ही रखते हैं, वे व्यावहारिक रूप से बलपूर्वक बालक के नैतिक और चारित्रिक विकास को अवरुद्ध कर रहे हैं।

ऐसे शिक्षक जो बालक को एक आदर्श पुरुष बनाना अपनी जिम्मेदारी समझते हैं, मात्र उन्हें ही उसके प्रशिक्षण की जिम्मेदारी देनी चाहिए। अब इसके बाद शिक्षक की जिम्मेदारी आती है। शिक्षक को पाठ्य पुस्तकों पर व्याख्यान मात्र ही नहीं देना चाहिए वरन विशेष अंश कंठस्थ भी कराना चाहिए और उसे स्वयं अपने जीवन में भी उतारना चाहिए तथा अच्छे उदाहरणों के द्वारा समझाना चाहिए। उन्हें सावधानीपूर्वक एक-एक बच्चे की प्रगति की ओर ध्यान देना चाहिए और प्रत्येक बालक की नैतिक और मानसिक प्रगति को देख कर उससे स्वयं संतुष्ट होना चाहिए। शिक्षक को विज्ञान,

समाजशास्त्र, अंकगणित के समान पढ़ाए जाने वाले विषयों से अधिक बालकों को नैतिक निर्देश देना चाहिए। उनका चारित्रिक निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे कभी भी समाज में जा कर (जहाँ कि उसे उनकी शिष्यता समाप्त होने पर जाना है) के विरोधी प्रभाव में डावाँडोल न हों। बालक के सद्व्यवहार के लिए माता-पिता और गुरु अकेले ही उत्तरदायी हैं। ज्ञान से परिपूर्ण बालक एक पूर्ण विकसित पुष्प की भाँति होता है। यह पुष्प बृहत क्षेत्र में अपनी मधुर सुगंधि बिखेरता है। उसकी सुगंधि से आकृष्ट हो कर बालक के भीतर एकत्रित ज्ञान के मधु को खींचने तथा आनंद लेने के लिए मधुमक्खियाँ एकत्रित होती हैं। वह ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात पूर्ण योगी हो जाता है। वह रहस्यमय ज्ञान के खजाने को अन्यों के लिए ही नहीं वरन् स्वयं के लिए खोदता है। वह एक आदर्श पुरुष होता है। वह एक आदर्श योगी होता है। वह देवपुत्र कहलाने के योग्य है। वह माता-पिता के लिए नाम और यश ले कर आता है। एक कलेक्टर अथवा गवर्नर का सम्मान तो उसके पद पर रहने तक अथवा अधिक से अधिक उसकी मृत्यु तक रहता है, किंतु यह ज्ञानी जो आत्मज्ञानी है, उसका स्मरण विकास के चक्र तक ही नहीं वरन् अनंत काल तक किया जाता है।

हे माताओ! ऐसे बालक के लिए प्रार्थना करो। यदि आप ऐसे सौ बालकों को भी जन्म देंगी जिनमें सद्गुण न हों तो न आप प्रसन्न रहेंगी न बच्चे। गांधारी के सौ बेटे थे। कुंती ने तीन बालकों को जन्म दिया और कौशल्या ने एक को। आप किसे पसंद करेंगी। गांधारी अथवा कौशल्या को ?

देवी से आप अपने वंश को बनाए रखने के लिए ऐसे ही एक पुत्र के लिए प्रार्थना करे। वे सर्व शक्तिमान हैं। वे सब-कुछ कर सकते हैं। आप उनकी किसी भी रूप में आराधना कर सकते हैं। इस विश्व की रचना मात्र उनके ही कारण है। हम सब उसके हाथों के खिलौने हैं। शक्ति के तीन रूपों क्रिया, इच्छा और ज्ञान के कारण यह जगत शासित है। शक्ति की आराधना आपको मात्र समृद्धि ही नहीं देती वरन समस्त बंधनों से मुक्ति प्रदान करती है। देवी ने कहा है : "मैं ब्रह्म की प्रकृति हूँ, मैं प्रकृति पुरुष की प्रकृति हूँ। मैं ज्ञान और अज्ञान हूँ। मैं आत्मा की शक्ति हूँ। मैं अनादि सत्य हूँ। मैं ब्रह्म की अद्वैत शक्ति हूँ।"

आप सभी पूर्ण आस्था और भक्ति के साथ यह दशहरा मनाऐं। आप सभी के ऊपर देवी की कृपा वृष्टि हो !

नवरात्रि दुर्गा पूजा का महत्व (१९४६)

समय-समय पर धार्मिक त्योहार, पूजा और व्रत के अनेक महत्व हैं। देवी की आराधना के अतिरिक्त ये प्राचीन घटनाओं का स्मरण कराते हैं। जब इनकी गूढ़ ढंग से व्याख्या की जाती है तो वे

अतीत की रहस्यमय घटनाओं का स्मरण कराते है और अन्त में ये जीव का उसके भगवद्-साक्षात्कार के मार्ग पर प्रत्यक्ष मार्गदर्शन करते हैं।

बाह्य रूप से देवी अथवा माँ की यह नौ दिनी पूजा विजय उत्सव है। शुभ निशुंभ के द्वारा भेजे गये असुरों पर देवी की संघर्षपूर्ण विजय की प्रसन्नता में इन नौ और दिनों में देवी को पताका अर्पित की जाती है। लेकिन साधक के लिए देवी के विभिन्न रूपों में की आराधना नवरात्रि के नौ दिनों को तीन दिनों के समूह में विभक्त करके करना अत्यंत मंगलकारी होता है। यह व्यावहारिक सत्य को प्रगट करता है। इसके दैवी रूप में यह मनुष्य से ईश्वर में जीवात्मा से शिव में विकास की स्थितियों को सूक्ष्म करता है। इसके वैयक्तिक महत्व में यह बताता है कि आध्यात्मिक साधना करना चाहिए।

अब अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य है, परमात्मा के साथ आपकी सनातन अभिन्नता को पहचानना। यह देवी की प्रतिमा में विकसित होता है। परमात्मा इस रूप में साकार रूप में प्रगट होते हैं। यह निर्दोष पवित्रता है, निरंजना है। उसके साथ आपकी अभिन्नता का साक्षात्कार करने के लिए तथा उनके साथ सम्पर्क करने के लिए देवी के रूप का विकास किया गया है। इसलिए साधना के प्रारंभ में साधक को अपने भीतर की समस्त अशुद्धियों, आसुरी वृत्तियों से मुक्ति पानी होगी। उसके बाद उसे सद्गुणों, दैवी गुणों का अर्जन करना होगा। और इसके उपरांत शुद्ध होने तथा सत्व से परिपूर्ण होने पर जैसे शांत झील के स्वच्छ जल के ऊपर सूर्य की किरणें गिरती हैं, उसी प्रकार साधक के ऊपर ज्ञान की किरणें गिर कर उसे चकाचौंध कर देंगी।

साधना के लिए दृढ़ संकल्प, निश्चित प्रयास तथा कठोर संघर्ष की आवश्यकता है। अन्य शब्दों में शक्ति तथा अनंत शक्ति सर्वप्रथम अनिवार्य है। देवी माँ-प्रभु की परम शक्ति हैं जो साधक के द्वारा कार्य करती हैं। अब देखिए कि प्रथम तीन दिनों तक देवी माँ की आराधना भयंकर दुर्गा शक्ति के रूप में की जाती है। इस समय आपको माँ दुर्गा से अपनी समस्त अशुद्धियाँ, दोषों और दुर्गुणों का उन्मूलन करने की प्रार्थना करनी चाहिए। उसे साधक के मूलभूत आसुरी गुणों, उसकी निम्न आसुरी प्रकृति से संघर्ष करना पड़ता है और उसका उन्मूलन करना पड़ता है। साथ ही देवी वह शक्ति हैं जो आपकी साधना की अनेक खतरों और गर्तों से रक्षा करती हैं। इसी कारण प्रथम तीन दिन मल के नाश की प्रथम अवस्था तथा आपके मन की बुरी वासनाओं को जड़ सहित उखाड़ फेंकने के आपके निश्चित प्रयत्न हेतु देवी के विनाशकारी रूप की आराधना हेतु अलग रखे गये हैं।

यदि आपने एक बार अशुद्ध प्रवृत्तियों और पुरानी दुष्ट आदतों के उन्मूलन का कार्य कर लिया, तो अगला चरण है पवित्र आध्यात्मिक चरित्र का विकास और बाहर की गयी आसुरी प्रवृत्तियों

के स्थान पर सद्‌गुणों का अर्जन करना। भगवान् कृष्ण ने गीता में जिन दैवी गुणों (दैवी सम्पद) का वर्णन किया है, साधक को उन सभी सद्‌गुणों का अर्जन और जीवन में उनका अभ्यास करना चाहिए। साधक को दिव्य ज्ञान के दुर्लभ रत्नों का मूल्य चुकाने के लिए, प्रचुर आध्यात्मिक संपत्ति का अर्जन करना चाहिए। यदि इन सद्‌गुणों का प्रयत्नपूर्वक नहीं किया गया तो पुरानी आसुरी वृत्तियाँ बार-बार सिर उठाऐंगी। इसलिए आध्यात्मिक साधक के लिए यह दूसरी अवस्था भी प्रथम अवस्था जितनी ही महत्वपूर्ण है। दोनों में अनिवार्य अन्तर यह है कि पहली वाली अवस्था अशुद्‌ध अहंकारी क्षुद्र आत्मा का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन है और द्‌वितीय अवस्था शुद्‌धता के विकास हेतु क्रमबद्‌ध, स्थिर, शांतिपूर्वक सच्चा प्रयास है।. साधक की साधना का आनंदकारी पक्ष लक्ष्मी पूजा के द्‌वारा होता है। वे अपने भक्तों को दैवी संपदा का अक्षय भंडार प्रदान करती हैं। लक्ष्मी ब्रह्म का संपत्ति प्रदायिनी रूप है। वह स्वयं ही शुद्‌धता है। इस प्रकार देवी लक्ष्मी की आराधना तीन दिनों के दूसरे समूह में की जाती है।

यदि एक बार साधक दुष्ट प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकने तथा सात्विक गुणों के विकास के अपने प्रयत्न में सफल हो जाता है, तो वह परम ज्ञान के प्रकाश को ग्रहण करने का अधिकारी बन जाता है, वह परम ज्ञान के प्रकाश को ग्रहण करने के योग्य हो जाता है। वह दिव्य ज्ञान प्राप्ति के योग्य हो जाता है। इस अवस्था में देवी सरस्वती जो कि दैवी ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान का साकार स्वरूप है की भक्तिपूर्वक आराधना का समय आता है। उनकी वीणा श्रेष्ठ महावाक्यों तथा प्रणव के स्वरों को हृदय में जगाती है। वह परम नाद का ज्ञान देती है और उसके पश्चात पूर्ण आत्मज्ञान प्रदान करती है जो उनके श्वेत धवल वस्त्रों से अभिव्यक्त होता है। ज्ञान देने वाली श्री सरस्वती की आराधना तृतीय अवस्था है।

दसवाँ दिन - विजयादशमी सरस्वती माता की कृपा से प्राप्त ज्ञान के द्‌वारा जीवात्मा के इस संसार में रहते हुए जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाने की विजय पताका फहराने का संकेत करता है। जीव अपने आत्म स्वरूप सच्चिदानंद स्वरूप में विश्राम करता है। यह दिन लक्ष्य प्राप्ति की विजय का उत्सव है। यह विजय पताका ऊँची फहरा रही है, मैं वह हूँ, मैं वह हूँ।

चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ;
चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।

इसका साधक के आध्यात्मिक विकास में भी अपना महत्व है। यह विकास की उन स्थितियों की ओर संकेत करता है, जिनसे प्रत्येक को हो कर जाना पड़ता है। यदि कोई साधक छोटे रास्ते से जाता है, तो छोटे रास्ते से जाने पर परिणाम गंभीर असफलता होता है। आजकल कुछ अज्ञानी साधक बिना आरंभिक शुद्‌धि और सद्‌गुणों को अर्जित किए बिना सीधे ही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं और

ऐसा कहते हैं कि वे अपने मार्ग में प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन उनकी प्रगति कैसे होगी? जब तक अशुद्धियाँ बाहर नहीं निकाल दी जाएँगी, जब तक शुद्धता का विकास नहीं होगा, तब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। पवित्र पौधा अपवित्र भूमि में कैसे उग सकेगा ?

इस क्रम का पालन कीजिए, आपके प्रयत्नों को अवश्य ही सफलता मिलेगी। यह आपका पथ है। "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अन्य कोई पथ मुक्ति के लिए ज्ञात नहीं है। एक दुर्गुण को नष्ट कीजिए और एक विपरीत सद्गुण का विकास कीजिए। इस विधि के द्वारा आप स्वयं को उस पूर्णता तक पहुँचा देंगे, जहाँ आप स्वयं को ब्रह्म से पहचानने योग्य होंगे, जो आपका लक्ष्य है। तब संपूर्ण ज्ञान आपका होगा। आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान बन जाएँगे। आप सभी में स्वयं के ही दर्शन करेंगे। आप एक जीवन्मुक्त बन जाएँगे। आप जन्म और मृत्यु के चक्र के ऊपर संसार रूपी दैत्य के ऊपर विजय प्राप्त कर लेंगे। अब कोई कष्ट नहीं, अब कोई दर्द नहीं, अब कोई जन्म नहीं, अब कोई मृत्यु नहीं, विजय और मात्र विजय होगी आपकी।

देवी माँ को प्रणाम! वे आपको चरण दर चरण आध्यात्मिक सीढ़ी के ऊपर लेके जाएँ और आपको ईश्वर से एक कर दें।

देवी पूजा का सच्चा महत्व (१९४७)

भारत आज स्वतन्त्रता के लंबे समय से आकांक्षित लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात नौ दिनी दुर्गा उत्सव मना रहा है। सभी के लिए इस पूजा का सच्चा भाव तथा महत्व जानना महत्वपूर्ण है, जिससे कि सभी इसका अधिकतम आध्यात्मिक और भौतिक लाभ प्राप्त कर सकें।

देवी की पूजा की विधि का अर्थ यदि आप सही ढंग से समझ लें तो यह आपको दिव्य जीवन जीने का सही मार्ग बताती है। यह आपको उस प्रकार जीवन जीना सिखाती है जिससे कि आपका जीवन देवी की सच्ची और व्यावहारिक पूजा और आराधना बने। यह अंधकार, असत्य, नश्वरता से जागने और प्रकाश, सत्य और अमरता के राज्य में प्रवेश करने के रहस्य खोलती है।

देवी पूजा के तीन रूप हैं–अच्छाई, समृद्धि और ज्ञान। अच्छाई सत्य को प्रगट करती है, समृद्धि आनंद की परिचायक होती है और ज्ञान अन्तरज्ञान की ओर प्रेरित करता है तथा आपको सच्चिदानंद के लक्ष्य की ओर ले के जाता है। उपरोक्त तीनों बताए गए तथ्यों का मनुष्य जीवन में ले कर आना ही उस देवी माँ की सच्ची आराधना और जागरण है, जो मानव जीवन के प्रत्येक रूप में प्रगट हैं।

परंपरागत पूजा निस्संदेह अच्छी है, किंतु यह पूजा जीवंत पूजा है, जो वास्तव में आपको अत्यंत शीघ्र रूपांतरित करती है और आध्यात्मिक करती है और आपको उच्च साक्षात्कार हेतु प्रेरित करती है। देवी माँ को आपके पवित्र हृदय वेदी पर में स्थापित करने के लिए, उनकी दैवी शक्ति को भीतर प्रगट करने के लिए तथा सभी की सेवा और सभी के कल्याण के लिए जीना देवी माँ दुर्गा की आराधना और पूजा का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

देवी लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए आपको सभी के जीवन में समृद्धि लाने का निरंतर प्रयत्न करना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि आप बड़े दिल वाले, उदार, दानी और दयालु बनें। साधक को अपनी क्षमता के अनुसार सभी के दुःख दूर करने तथा उनके जीवन में आनंद लाने का कठोर प्रयत्न करना चाहिए।

जो धनवान हैं, उन्हें मैं निर्धन रोगियों के लिए निःशुल्क डिस्पेंसरियाँ और अनाथों के लिये भोजनालय खोलने तथा अशिक्षितों को पढ़ाने तथा देश की संपत्ति में वृद्धि के लिए प्रत्येक साधन को प्रोत्साहन देने के लिए कहता हूँ। जहाँ समृद्धि और आनंद चारों ओर हों, मात्र वहीं देवी लक्ष्मी अधिक सरलता से प्रसन्न हो सकती हैं।

अब देवी सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए पहले आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना होगा। आपको एक प्रकाश का पुंज बनना होगा और आपको दिव्य ज्ञान को प्रत्येक को विकरित करना होगा। ऐसे सच्चे साधक पिछड़े हुए तथा अशिक्षित लोगों की बस्ती में जा सकते हैं और उन्हें निःशुल्क लौकिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार आप देवी सरस्वती की आराधना को बृहत और सच्चा स्वरूप प्रदान करेंगे।

नवरात्रि का संदेश पवित्रता, समृद्धि एवं ज्ञान हेतु आवाहन है। जहाँ ज्ञान और सद्गुण संयुक्त रूप से उपस्थित हों, वहाँ हमें दिव्य जीवन मिलता है। इसलिए आपको आध्यात्मिकता के विकास के साथ शुद्धता, सद्गुण तथा व्यावहारिक ज्ञान के नए युग का सूत्रपात करना चाहिए।

ऐसी जीवंत पूजा को प्रणाम और ऐसे दैवी पूजकों को प्रणाम। देवी माँ का आशीर्वाद सभी को शांति, समृद्धि और प्रचुरता प्रदान करे।

दुर्गा पूजा (१९४८)

देवी माँ की जय हो, जिसकी प्रणाम है। 1 कृपा से सब कुछ अस्तित्वमान है! मेरा उनको

जैसा किसी एक के साथ होता है वैसा ही संपूर्ण ब्रह्मांड में सभी के साथ होता है। देवी के बिना कुछ भी संभव नहीं है। मनुष्य की आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति अभिन्न रूप से माँ के साथ बंधी हुई है। मानव का मानवीय अंश लगभग संपूर्णतया उसकी माँ के द्वारा ढाला जाता है। उसका चरित्र निर्माण, मानसिक निर्माण तथा बौद्धिक योग्यता एवं उसके पूरे व्यक्तित्व को आकार उसकी माँ के द्वारा दिया जाता है; यही कारण है कि श्रुतियों में उसे अपनी माँ को भगवान् की भाँति व्यवहृत करने के लिए कहा है। यही आध्यात्मिक क्षेत्र में भी है। बिना देवी माँ की सहायता के मनुष्य के लिए किंचित भी आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है। जब सर्वशक्तिमान यक्ष के अचानक अदृश्य हो जाने पर इंद्र भ्रमित हो गए थे और उन्हें छोटे देवताओं अग्नि और वायु के समक्ष लज्जित होना पड़ रहा था तो उमा ने ही उनको मुक्त कराया था तथा उन्हें ज्ञान अर्थात उन्हें यक्ष की सच्ची पहचान – ब्रह्म का ज्ञान प्रदान किया था (केनोपनिषद्) ।

देवी उनके द्वारा किए जाने वाले अनेक कार्यों के अनुसार अनेक रूप ग्रहण करती हैं। कभी-कभी मधुर और कोमल और कभी-कभी भयंकर और डरावनी । लेकिन वह सदा अपने भक्तों पर दयालु और कृपालु होती है। देवी माहात्म्य (दुर्गा सप्तशती) पढ़िए। देवी माया शक्ति है, जो मनुष्य को निरंतर घूम रहे इस संसार के चक्र से बाँधे रखती है। वे जो ज्ञानी हैं, उन्हें भी मोहित कर देती हैं। हालाँकि वे ही अपने उन भक्तों को जो उनको प्रसन्न करते हैं, मोक्ष प्रदान करती है। यदि आप राजा सुरथ तथा वैश्य समाधि की भाँति उनसे सच्ची प्रार्थना करेंगे तो वे आपके समक्ष प्रगट हो कर आपको मोक्ष सहित सभी वरदान देंगी। इसमें कोई संदेह नहीं है।

नवरात्रि के समय संपूर्ण भारतवर्ष देवी की पूजा करता है और उनकी अत्यंत भक्तिपूर्वक आराधना करता है। प्रथम तीन रात्रियों में दुर्गा अथवा देवी के विनाशकारी रूप की पूजा होती है। अगले तीन दिनों तक देवी के सृजक रूप अथवा लक्ष्मी की पूजा होती है और अंतिम तीन रात्रियों में उनके ज्ञान रूप अथवा सरस्वती की आराधना की जाती है। दसवाँ दिन विजयादशमी अथवा विजय का दिन है। इस व्यवस्था का विशेष महत्व है। जब देवी की भक्त द्वारा प्रथम बार आराधना की जाती है। तो वह मन में छुपी दुष्ट प्रवृत्तियों का नाश करती है। उसके बाद वह उसके भीतर दैवी संपदा (जो आध्यात्मिक अनावरण हेतु संवाहक है) अर्थात दैवी गुणों की वहाँ स्थापना करती है। उसके पश्चात

वह उन्हें सच्चा ज्ञान प्रदान करती है और अन्त में साधक मुक्ति अथवा संसार पर विजय प्राप्त करता है।

नवरात्रि प्रबल साधना हेतु वर्ष में सर्वाधिक अनुकूल अवसर है। ये नौ दिन अत्यंत श्रेष्ठ हैं। जब संपूर्ण जगत में करोड़ों लोग माँ के नाम का जप और उनकी महिमा का गान कर रहे हों ! उस समय उस भूमि पर जहाँ देवी के नामों का उच्चारण हो रहा है, तीव्र वेग से चल रही उन अद्भुत आध्यात्मिक स्पन्दनों की तरंगों की कल्पना कीजिए! ऐसे स्थान पर सभी देवता अपने सूक्ष्म रूप में सदा उपस्थित रहते हैं। वे सभी आपको आशीर्वाद देते हैं और आपकी सहायता करते हैं। यदि आप इन नौ दिनों में प्रबल साधना करते हैं तो आपको अज्ञात स्रोतों से, ऋषियों और सिद्धों से अमूल्य सहायता प्राप्त होती है।

उनसे व्याकुलता से प्रार्थना कीजिए। वे सरलता से प्रसन्न हो जाएंगी। उनसे देवी माहात्म्य के राजा की भाँति तुच्छ सांसारिक वस्तुओं के लिए प्रार्थना न करें, वैश्य की भाँति मोक्ष के लिए प्रार्थना करें। वे आपके पास दौड़ते हुए आने के लिए सदा तैयार हैं। आपको उन्हें मात्र स्वीकार करना है। अपने मन की समस्त गंदगी को साफ करें और वहाँ माँ को एक स्वर्ण सिंहासन पर प्रतिष्ठित करें। अपने तुच्छ अहं को उनके चरणों में त्याग दें। प्रार्थना करें, "हे माँ आप ही करेंगी, मुझे कुछ नहीं चाहिए!" वे आपको हाथ पकड़ कर, मोक्ष हेतु ले कर जाएंगी !

देवी पूजा (१९४९)

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

हे त्रिनेत्र वाली नारायणी देवी, आश्रयदात्री, मंगलकारी, समस्त कामनाओं को देने वाली, समस्त मंगल में जो मंगलकारी है उस देवी को प्रणाम है।

देवी! शक्ति अथवा उस दैवी शक्ति का समानार्थी है जो विश्व को प्रगट करती है, पोषण करती है अथवा उसे अस्तित्व को जोड़ने वाले बल के रूप में रूपांतरित

करती है। वास्तव में देवी की पूजा सांप्रदायिक नहीं है। यह किसी पंथ के साथ जुड़ी हुई नहीं है जैसी कि सामान्य रूप से गलत धारणा है। देवी वह नहीं है जिसे विष्णु अथवा शिव का विरोधी

मान लिया गया है जैसा कि सामान्यतया लोग समझते हैं। देवी अथवा शक्ति से हमारा अर्थ है कि अस्तित्वमान सभी शक्तियाँ तथा वे शक्तियाँ जो भगवान् के महिमामय रूप हैं–आप उन्हें विष्णु अथवा शिव जैसा भी आप पसंद करें, पुकार सकते हैं। अन्य शब्दों में शक्ति इस विश्व को बनाने वाले अनेक देवताओं के रूप में परमात्मा की संभाव्यता है। भगवान् ने इस संसार की रचना उसकी सृष्टि शक्ति के द्वारा की है और इसका संरक्षण स्थिति शक्ति से किया है तथा इसका नाश वे संहार शक्ति से करते हैं। शक्ति और शाक्त एक ही हैं। शक्ति और शक्ति को धारण करने वाला दोनों अलग नहीं किए जा सकते। भगवान् और शक्ति, अग्नि और अग्नि की उष्णता के समान हैं।

इसी कारण देवी पूजा अथवा शक्ति की पूजा भगवान् की महिमा अथवा भगवान् की महानता की पूजा है। यह परमात्मा की पूजा है। यह दुर्भाग्य है कि देवी को मात्र रक्त की प्यासी हिंदू देवी समझ लिया गया है। नहीं, नहीं, देवी मात्र हिंदुओं की संपत्ति नहीं है। देवी किसी एक हिंदू धर्म से संबद्ध नहीं है। देवी लिंग भेद के कारण देव से भिन्न नहीं की जा सकती। देवी देव की चेतना है। इसे नहीं भूलना चाहिए। देवी शक्ति आदि शब्द और वे धारणाऐं जो इन रूपों से संबद्ध हैं, वे मानव ज्ञान की सीमितता के कारण दिये गए हैं। वे देवी की अंतिम परिभाषा नहीं हैं। वास्तविक शक्ति तो मानव की समझ से परे है। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं, "यह मात्र मेरी निम्न प्रकृति (शक्ति) है– मेरी उच्च प्रकृति (वास्तविक शक्ति), तो इस विश्व को बनाए रखने वाले वह जीवन तत्त्व के भी परे है।" उपनिषद कहती है, “पराशक्ति- भगवान् की परम शक्ति अनेक प्रकार से सुनी गयी है, यह भगवान् की प्रकृति शक्ति, ज्ञान शक्ति तथा क्रिया के रूप में प्रगट होती है।" सच ही कहता विश्व के सभी प्राणी शक्ति के उपासक हैं, कोई भी ऐसा नहीं है जो किसी न किसी रूप में शक्ति के प्रति प्रेम तथा लालसा न रखता हो, तथा वैज्ञानिकों ने भी अब सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक वस्तु शुद्ध अविनाशी ऊर्जा है। यह ऊर्जा उस दैवी शक्ति का एक रूप है जो अस्तित्व के प्रत्येक रूप में अस्तित्वमान है।

शक्ति की आराधना इसकी अनिवार्य प्रकृति में नहीं की जाती है। इसकी आराधना इसके प्रगट किसी भी रूप जैसे सृजन, संरक्षण तथा संहार के रूप में की जाती है। इन तीनों कार्यों से शक्ति सरस्वती, लक्ष्मी, काली के रूप में सम्बद्ध है। ये जैसा प्रतीत होता है कि ये अलग-अलग हैं, किंतु वास्तव में ये अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि ये एक ही निराकार देवी के अलग-अल तीन रूप हैं। उनसे जुड़े तीनों देव हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश। जो कि इसी प्रकार तीन अलग-अलग देव नहीं हैं, बल्कि एक ही परमात्मा जो निराकार है, के विभिन्न रूप हैं। नवरात्रि महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती विश्व की देवी की आराधना की नौ रात्रियों का उत्सव है।

सरस्वती दिव्य बुद्धि, दिव्य चेतना, दिव्य ज्ञान है। देवी सरस्वती की उपासना बुद्धि शुद्धि अथवा विवेक उदय, विचार शक्ति, ज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार हेतु अनिवार्य है। लक्ष्मी का अर्थ मात्र भौतिक संपत्ति जैसे स्वर्ण, पशु आदि नहीं है। सभी प्रकार की समृद्धि यश, वैभव, आनंद, श्रेष्ठता अथवा महानता लक्ष्मी के अन्तर्गत आती हैं। अप्पय्य दीक्षित तो यहाँ तक कि अंतिम मोक्ष को भी "मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी कहते है।" इसी कारण लक्ष्मी की आराधना का अर्थ है– अस्तित्व की, स्वयं के मुख्य उद्देश्य की आराधना । महालक्ष्मी दिव्यता की परिवर्तन करने की शक्ति हैं। वह शक्ति जो अनेकता को एकता में विलीन कर देती है। इसलिए देवी की आराधना इसके सभी रूपों में आध्यात्मिक साधना की संपूर्ण क्रियाविधि की व्याख्या है।

नवरात्रि के समय में कठोर अनुष्ठान करें और अपनी आंतरिक प्रकृति को शुद्ध करें। यह देवी की आराधना हेतु वर्ष में सबसे अधिक श्रेष्ठ समय है। दुर्गा सप्तशती अथवा देवी माहात्म्य, ललिता सहस्रनाम पढ़ें। देवी के मन्त्र का जप करें। शुद्धता, लगनशीलता तथा भक्ति के साथ परंपरागत पूजा करें।

देवी के दर्शन के लिए रुदन करें। देवी आपको वह ज्ञान, शांति तथा आनंद प्रदान करेंगी जिसका कोई अन्त न होगा।

देवी माँ आप सब को आशीर्वाद प्रदान करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः, शान्तिः !

देवी पूजा का महत्व (१९५०)

अमर आत्मा !

आप सभी को शांति प्राप्त हो! विश्व माता को प्रणाम! नवरात्रि उत्सव तथा देवी पूजा ने संपूर्ण वातावरण को शुद्ध कर दिया है। अब मैं आपको देवी की पूजा के महत्व को बताता हूँ। देवी विश्व के सृजन, संरक्षण तथा संहार के रूप में वह चिरूपिणी शक्ति है, जो कि भगवान् जो कि सच्चिदानंद हैं की अनंत शक्ति है। देवी पूजा अथवा दुर्गा पूजा उस देवी माँ की आराधना है, जो कि विश्व के बीज को अपने अविनाशी गर्भ महद् ब्रह्म में धारण करती है, देवी चैतन्य शक्ति है, विश्व के परम सर्वसत्ताधारी की महानता ने सृष्टि के जगत में जीवों को प्रगट किया। चूँकि विश्व के सृजक, संरक्षक और संहार कर्ता एक ही भगवान् हैं जो कि तीन रूपों में प्रगट हुए हैं। इसलिए वह शक्ति जो कि भगवान् से अभिन्न है, वही त्रिरूप में उसी प्रकार प्रगट हुई है, जिस प्रकार एक ही व्यक्ति उसके चरित्र और शक्तियों के कारण जाना जाता है। भगवान् ने देवी के रूप में अपनी शक्ति को प्रगट किया है, यह समस्त ज्ञान, संकल्प तथा क्रिया के रूप में दिखायी देती तथा अनुभव की जाती है और साथ ही साथ यह अदृश्य और समझ से परे है। संपूर्ण विश्व इसके अविनाशी सृजक की समृद्धि तथा महिमा का प्रागट्य है, जो कि पृथ्वी तथा स्वर्ग के परे है। वह दिव्य स्वामी सर्वत्र इसकी दो शक्तियों विद्या और अविद्या के द्वारा कार्य करता है।

आंतरिक युद्ध

नौ दिनों में परम देवी की लीला तथा निम्न प्रकृति की शक्तियों पर उच्च शक्तियों की विजय का वर्णन किया गया है। यह महान युद्ध - विश्व के विषयाश्रित तथा वैयक्तिक दोनों प्रकार के जीवन को इंगित करता है। विद्या शक्ति सदैव सर्वोपरि है और सर्वत्र जहाँ भी जीवात्मा तथा आसुरी शक्तियों की अपूर्णता सीमाओं का अतिक्रमण होता है, तो दैवी ज्ञान शक्ति अज्ञानता को इसकी अनुगामी सेना– कारण, कामना तथा स्वार्थ पूर्ण कार्यों सहित नाश करने के कार्य में जीवात्मा के भीतर प्रत्येक कोने से प्रवेश करती है। देवी माहात्म्य अथवा सप्तशती में देवी का वर्णन देवताओं की ऊर्जा के पुंज, मुख्य रूप से ब्रहमा, विष्णु और शिव की शक्ति के पुंज के रूप में वर्णन किया गया है। यह शक्ति तब प्रगट हुई, जबकि विषय शक्तियाँ बुद्धि के ऊपर विराजमान हो गई, जब बुद्धि का वासना, क्रोध, लोभ, द्वेष आदि आसुरी शक्तियों (जो कि विनाशक प्रवृत्ति की थीं) के द्वारा दमन किया जाने लगा, और वे वास्तव में जीवन के दुःखों के रूप में अपनी दीनता का अनुभव करने लगीं। प्रतीकात्मक रूप से ये देवों के द्वारा उनके राजा इंद्र (मन) के साथ एकत्र और ये सब एक हो कर उच्च प्रकृति के पास सहायता के लिए गईं। तत्काल भीतर स्थित दैवी तत्त्व ने स्वयं को अपनी

अद्भुत शक्ति की क्षमता के साथ प्रगट किया और इस सत्य के एकीकरण ने, पाशविकता के वासना से परिपूर्ण जीवन तथा जो सब आसुरी था अथवा जो अविद्या से संबद्ध था, का अन्त कर दिया। विजयादशमी अज्ञानता की ऋणात्मक प्रकृति पर विजय के उत्सव का दिन है।

देवी देव से अभिन्न है

सत्य में पूर्णता की खोज करने वालो! यहाँ तक कि चाहे आप इसकी ओर जाने वाले तथा इससे सम्बद्ध मार्ग से लक्ष्य तक भी पहुँच गये हैं, तो भी भगवद्साक्षात्कार आनुभविक यथार्थता के कुछ स्तरों के द्वारा ही हो सकता है, ये आध्यात्मिक अनुभवों में सीढ़ी का कार्य करते हैं। सत्य तथा चेतना के विभिन्न स्तरों सहित उनका जगत, भगवान् की शक्ति है। ईशावास्योपनिषद् में आप पढ़ेंगे कि असंभूति और संभूति की आराधना अंतिम पूर्णता की प्राप्ति हेतु प्रेरित करती है। भगवान् को उसकी इस विश्व पर शासन करने वाली शक्ति से उसी प्रकार पृथक नहीं किया जा सकता है, जिस प्रकार आप अग्नि और ऊष्मा को पृथक नहीं कर सकते हैं। आप किसी भी पदार्थ को उसके गुण कारण जानते हैं। आप भगवान् का साक्षात्कार उनकी शक्ति, जो कि देवी, महामाया, प्रकृति तथा सबकी जननी है, के द्वारा ही कर सकते हैं।

पूजा की विधि

आप देवी की पूजा वैदिक अथवा तांत्रिक विधि से कर सकते हैं। उनकी पूजा तो बिना किसी धार्मिक कर्मकांडों के परा पूजा अथवा मात्र शुद्ध ध्यान जाती है। वास्तव में यही पूजा का सर्वोच्च प्रकार है, जहाँ देवी माँ को उसके आध्यात्मिक बालक द्वारा उसकी अपनी माना जाता है। देवी की कृपा भक्त के द्वारा द्वारा भी की उनके प्राकट्य के नियमों की दैवी शक्ति अथवा एक दैवी शक्ति के रूपों के द्वारा उच्च प्रकृति का अनुभव है। देवी का उपासक यह जान कर कि देवी स्वयं परब्रह्म शक्ति है, वह भगवान् और उसकी शक्ति के मध्य कोई अवरोधक नहीं लगाता। यहाँ तक कि जो सूर्य और इसकी द्युति को पृथक नहीं मानता वह भी देवी की कृपा से ब्रह्म की स्थिति में पहुँच जाता है। इसका अर्थ है कि वह साधना मार्ग जिस पर एक साधक चल रहा है उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह नीचे की सीढ़ियों को चढ़े बिना एकदम से कूदकर सीधे ऊपर पहुँच जाएगा उसे तो भौतिक चेतना से उच्च अवस्था तक क्रमशः चरण दर चरण दृश्यमान अनुभवों के प्रगट क्रम की श्रेष्ठता के अनुसार जाना है।

निम्न प्रकृति का त्याग अनुरूप

इस प्रकार दुर्गा पूजा का एक महान आध्यात्मिक महत्व है। इसलिए विश्वमाता ब्रह्म की शक्ति की उसके परम रूप अथवा उसके प्रगट रूप में अपनी क्षमता के अनुरूप आराधना कीजिए। मैं इसके अनिवार्य तथ्य पर बल देने की आवश्यकता नहीं समझता कि यदि आप परम सत्य की दैवी शक्ति देवी का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो आप अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का कड़ाई से पालन करें। मैं साधना के नैतिक पक्ष के ऊपर बल दूँगा, क्योंकि बिना इसके कोई मूल्यवान प्राप्ति संभव नहीं है। बिना इसके उच्च आदर्शों में ऊपर उड़ने का कोई लाभ नहीं होगा, वे राख के ऊपर डाले गए भोग की भाँति व्यर्थ हो जाऐंगे। देव अथवा देवी की आराधना आध्यात्मिक ज्ञान के लिए की जा रही है तो यम और नियम का पालन अनिवार्य है। ये पाशविक प्रकृति पर विजय तथा आध्यात्मिक विजय का ध्वज फहराने में दुधारे उपकरण की भाँति कार्य करते हैं। देवी दुर्गा को अपने दुर्गुणों, वासना, क्रोध और लोभ के पशु को भेंट कीजिए, देवी को बलि के नाम पर बाह्य जगत के पशुओं को न मारें। वह आपके भीतर के पशु मानव का बलिदान चाहती हैं, इसके लिए किसी प्रकार की हिंसा नहीं की जानी चाहिए। किसी भी कारण से आपको किसी भी प्राणी को हानि पहुँचाने का कोई अधिकार नहीं है। अहिंसा को श्रेणी, स्थान, समय और परिस्थिति से मुक्त होना चाहिए। अहिंसा एक वैश्विक शपथ है जिसका कि पूर्णतया पालन किया जाना चाहिए। कोई भी पूजा, कोई भी प्रार्थना, कोई भी कार्य किसी भी जीवित प्राणी को चोट पहुँचाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। आत्मरक्षा भी हत्या को सही नहीं साबित कर सकती है। आपको विश्व-प्रेम के नियम पर अपनी क्षमता के अनुसार यथासंभव दृढ़ रहना चाहिए। आत्म समर्पण देवी के समक्ष अपने अहं का समर्पण सबसे बड़ा त्याग है। इससे अधिक श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसके समान कोई चीज नहीं है। यह देवी की आराधना का श्रेष्ठ प्रकार है। परमात्मा की आराधना आत्मभाव, सर्वात्मभाव से कीजिए। यह संसार में सबसे महानतम और गरिमामय कार्य है। आप सभी देवी की सच्ची आराधना के ज्ञान को धारण करें। देवी दुर्गा आप सभी पर अपने आशीर्वाद की वृष्टि करें। ॐ ।

दैवी शक्ति की आराधना (१९५१)

रक्षा शक्ति की आराधना एक आवश्यकता है जिसका अनुभव सभी प्राणियों के द्वारा किया जा रहा है। यह आराधना विश्व का पोषण करने वाली शक्ति के लिए अथवा सामान्य जनों में यह मात्र उच्च शक्तियों को वशीकृत करने हेतु हो सकती है, जिनकी सहायता की खोज हेतु वे यत्नशील हैं। मनुष्य विवेक, बुद्धि और चेतना की देदीप्यमान क्षमता से युक्त है। वह यह जानता है कि उसका कल्याण विश्व को नियन्त्रण करने वाली शक्ति के साथ सामंजस्य में निहित है। मनुष्य शारीरिक

और मानसिक दोनों प्रकार का संरक्षण चाहता है। अनूठा भारतीय मानव मन विश्व की इस सच्चाई से सहमत है कि कोई परम बुद्धि सम्पन्न अपनी शक्ति के साथ कार्य कर रहा है, जो कि इस वैश्विक बुद्धि में छिपा है। यह परम शक्ति अवतार के रूप में प्रगट होती है जो कि दृश्यमान जगत अथवा वे अदृश्य कल्याणकारी शक्तियाँ हैं, जिनके प्रति मनुष्य साधारणतया चेतन नहीं रहता है। इस शक्ति द्वारा जो भी रूप ग्रहण किया जाता है, इसकी आराधना उस शक्ति के संपर्क में आने हेतु एक प्रयास है, जो कि मनुष्य के कल्याण के लिए अनिवार्य होती है। जो इसकी सदा आराधना नहीं कर सकते, उनके लिए शास्त्रों ने समय-समय पर आराधना की व्यवस्था दी है।

ग्रीष्म ऋतु शीत ऋतु के अन्त और शीत ऋतु के प्रारंभ में तथा ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ और के अन्त में ये दोनों वर्ष में मौसम की स्थितियों तथा सूर्य के प्रभाव के अनुसार बड़े ही महत्वपूर्ण संयोग हैं। इन दोनों को • भगवान् की उपासना हेतु श्रेष्ठ अवसर माना जाता है। इनको चैत्र मास में राम नवरात्रि तथा अश्वायुज्य मास में दुर्गा नवरात्रि कहा जाता है। बाह्य प्रकृति में परिवर्तन होने के कारण लोगों के मन तथा शरीर में भी तदनुरूप परिवर्तन होता है। प्रथम अवसर पर रामनवमी पर श्री राम की आराधना की जाती है और दूसरे अवसर पर देवी दुर्गा की आराधना की जाती है। राम भगवान् की शक्ति (प्रकृति, आत्म माया या योग माया) के द्वारा उनके अवतार थे। दुर्गा वह शक्ति है जो कि इस जगत के सृजक, संरक्षक, संहारक तत्त्व के रूप में प्रगट है। इसकी देवी माँ की भाँति महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूप में पूजा की जाती है, जो तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण के रूप को अभिव्यक्त करती हैं।

जिस प्रकार एक रस्सी तीन डोर से बनी होती है। यह विश्व इन तीन गुणों अथवा प्रकृति के तीन रूपों से बना है। देवी पूजा सभी के मूल कारण की पूजा है और यह सभी का कल्याण करती है।

यह मनुष्य का कर्तव्य है कि देवी माँ की आराधना करे; क्योंकि वे विश्व के स्वास्थ्य और संपत्ति पर शासन करती है। यहाँ तक कि मनुष्य की बुद्धि भी उनके द्वारा ही शासित होती है। मानव वास्तव में शक्तिमय (शक्ति से पूर्ण) है। वह शक्ति से अलग रह कर अस्तित्व में नहीं रह सकता। यह संपूर्ण विश्व ऊर्जा है और ऊर्जा शक्ति है। उसमें स्थित भगवान् का प्रगट रूप शक्ति है। उसके अप्रकट रूप में वह चित अथवा चेतना है। चित शक्ति वह चेतना है जो प्रत्येक चीज के भौतिक कारण की भाँति सभी जगह कार्य करती है। सभी चीजों की इस माँ की आराधना पर ही व्यक्ति की, समाज की, देश की तथा सम्पूर्ण जगत की समृद्धि निर्भर है। मानव शक्ति स्वयं महान नहीं है। यह दिव्यता के अक्षय स्रोत का रूप है। यह स्रोत सौभाग्य का कारण बन जाता है। यह तुच्छ विनाश और दुर्भाग्य के स्थान पर आध्यात्मिक निर्माण तथा सौभाग्य की ओर ले कर जाता है। इस

समय की महान आवश्यकता है, विश्व की दैवी शक्ति का ज्ञान और उसके साथ सामंजस्य, क्योंकि इसकी कमी पाप तथा कष्टों की संवाहक है।

पूर्ण के साथ प्रेममय संपर्क का अर्थ है, वह आनंद जो पूर्ण के साथ एक है।

हे खोजी ! आप एक आत्म संतुष्ट, स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं। आपकी महानता महाशक्ति अथवा भगवान् के ऐश्वर्य की विशालता का प्रतिबिम्ब मात्र है। अपनी अज्ञानता और अहंकार को त्याग दें।

स्वयं को देवी माँ के समक्ष समर्पित कर दें। उनसे प्रार्थना करें! जो ब्रह्म शक्ति, विष्णु शक्ति, शिव शक्ति है। आप माँ के बच्चे हैं। आप उनका अपमान कैसे कर सकते हैं? आप उनके अंश से बने हैं। जानें कि वे सर्वव्यापक हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं है। जहाँ वे न हों। देवी माहात्म्य का पाठ करें और देवी मन्त्र का जप करें। देवी का ध्यान करें और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करें। यही आपका लक्ष्य है, यही आपकी सर्वोच्च समृद्धि है। यह यश की चरम सीमा, कैवल्य मोक्ष अथवा अंतिम मोक्ष है। आप सभी शांति में विश्राम करें और सौभाग्यशाली हों। देवी माँ की कृपा आप सभी पर सदा बनी रहे।

अपने हृदय में प्रेम को सिंहासनारूढ़ करें (१९५२)

प्रेम ही एकमात्र रूपांतरित करने वाली शक्ति है और माँ दैवी प्रेम का अक्षय स्रोत है। माँ का अपने बच्चों के प्रति प्रेम अकथनीय और अतुलनीय है।

यह प्रेम संपूर्ण वृद्धि, प्रगति, विकास और रूपांतरण के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षा है। यहाँ भय की अपेक्षा प्रेम से ही अधिक विकास होता है। भय (घृणा) से भिन्न) विकास को रोकता है और प्रगति को बंद कर देता है। प्रेम वृद्धि को बढ़ाता है। और प्रगति में वृद्धि करता है।

इस पवित्र अवसर पर जब हम सभी देवी की आराधना कर रहे हैं, इस महान सत्य पर विचार करें। यह प्रेम ही है जिस पर सृष्टि टिकी है और वह दैवी प्रेम देवी माँ का सच्चा प्राकट्य है।

जो कुछ भी यहाँ प्राप्त होता है, वह एकमात्र प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। दैवी प्रेम का अर्जन करें। और कुछ भी नहीं मात्र प्रेम ही अपने हृदय में रहने दें। यह बाधाऐं दूर करेगा और आपकी आध्यात्मिक प्रगति में वृद्धि करेगा। यह आपके शत्रुओं को आपके मित्रों में बदल देता है। यह शांति, समृद्धि और प्रचुरता के रूप भगवान् के समृद्धिशाली आशीर्वादों की आपके ऊपर वृष्टि करता है। यह आपको सर्वोच्च वरदान मोक्ष प्रदान करता है।

यह वह पाठ है, जो देवी माँ आपको सिखाती है। पवित्र और पापी, संत और दुष्ट, निर्धन और धनवान, सभी की वह माँ है, सभी उनके बच्चे हैं। उसका प्रेम वह है। जो कभी-कभी ऐसा लगता है कि नष्ट कर रहा है, लेकिन वास्तव में यह मुक्त करता है। उनका प्रेम वह है जो रक्षा करता है, अज्ञानता के आवरण को चीरता है और सबको मुक्त करता है।

सभी प्राणियों के प्रति वैराग्य से युक्त प्रेम का अर्जन करें और ऐसा होने पर ही आप माँ पराशक्ति को अपने हृदय सिंहासन पर आरूढ़ कर सकेंगे। तभी पृथ्वी पर शांति, मैत्री, आनंद, समृद्धि और मेल होगा। देवी का आशीर्वाद आप सभी के ऊपर हो। आप सभी इसी जन्म में जीवन्मुक्त की भाँति प्रकाशित हों।

आदर्श के प्रति प्रयत्न (१९५४)

देवी माँ की नौ दिन की आराधना करोड़ों हिंदुओं के द्वारा अभी-अभी की गई। यह सभा आपको दैवी चेतना की प्रतीक शक्ति जिसे भगवान् के रूप में ईश्वरीय शक्ति, अमर आत्मा पुकारते हैं, की आराधना का महत्व स्मरण कराने के लिए तथा व्यक्ति को भगवान् के साक्षात्कार के प्रति प्रेरित करने के लिए है।

देवी माँ को परमात्मा का क्रियात्मक प्रतीक कहते हैं, जो विश्व को नियंत्रित करती है। गुरुत्वाकर्षण, कारण और प्रभाव, विकास के नियम ये सभी इस क्रियाशक्ति के प्रतिनिधि हैं। यह सृजन, संरक्षण तथा विलय के पीछे स्थित प्रतीकात्मक शक्ति है। संपूर्ण विश्व इस शक्ति का प्रगट रूप है।

सभ्यता के प्रारंभ में हिंदू मन ने देवी माँ के मूर्ति पूजन में अनंत चेतना के प्रतीक की कल्पना की । यह अस्पष्ट, निराकार, निर्गुण अग्रहणीय, पारलौकिक आदर्श की अपेक्षा अधिक आकर्षक, समझने योग्य, संतान के समान निकट तथा अन्तरंग भावनात्मक रूप से संतोषजनक तथा

पारिवारिक रूप से मिलनसार धारणा है तथा यह किसी का लक्ष्य अथवा जीवन का अवलंबन हो सकता है।

"संपूर्ण विश्व, मन की विशालतम कल्पना है", ऐसा श्रुति में लिखा है। हालाँकि यह व्यक्ति की शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक तथा अवचेतन सत्ता से संबंधित है। यह स्पष्ट, असंदिग्ध तथा सम्बंधित रूप से तात्विक यथार्थता है। इसी प्रकार कोई भी विचार जो कल्पना से निर्मित हो, आस्था और भक्ति से पूर्ण तथा ध्यान और धारणा में आकर्षक हो वह निश्चित ही भौतिक रूप से सत्त्व, मानसिक विश्वनीय, सार पूर्ण, बौद्धिक रूप से ग्राह्य तथा आध्यात्मिक रूप से रूपांतरण करने वाली यथार्थता होगी और इसका मानव जीवन में मानव के आत्म-साक्षात्कार की और विकास में दूरगामी परिणाम होगा।

दैवी माँ की पौराणिक गाथा ऋणात्मकता के गहन बलों के ऊपर देवी शक्ति की विजय को अभिव्यक्त करती है। मानव जीवन में अच्छाई और बुराई के मध्य, सत्य तथा असत्य के मध्य, सद्गुण तथा दुर्गुण के मध्य, स्वतन्त्रता तथा गुलामी के मध्य, प्रकाश तथा अंधेरे के मध्य द्वंद सभी को भली प्रकार ज्ञात हैं। इसलिए यह अवसर साधक को उस महान दैवीय नियम का वर्ष में स्मरण कराने के लिए है कि अन्त में असुरता पर दिव्यता की सदा विजय होती है। यह अवसर इसलिए साधक को प्रतिवर्ष उस महान दैवी नियम का स्मरण कराता है कि दैवी इच्छा आसुरी इच्छा पर सदैव विजयी होती है।

नवरात्रि मनुष्य के भीतर दैवी प्रकृति को अनुभव करने तथा व्यक्त करने, सत्य और प्रेम के प्रकाश को प्रगट करने, अपने भीतर के बलों पर विजय के लिए जाग्रति की पुकार है, क्योंकि प्रेम और भाईचारे तथा निःस्वार्थता के सकारात्मक बलों के द्वारा नकारात्मक और आसुरी तत्व लोगों के हृदयों तथा मनों से बाहर निकल जायेंगे। अंधकार कभी भी प्रकाश को रोक नहीं सकता है। सत्य, प्रकाश और अच्छाई समानार्थक शब्द हैं। वे भगवान् के दृश्यमान भाव हैं।

असत्य के साथ इसका कितना ही लंबा, कष्ट दायक और घुमावदार द्वंद हो सत्य ही एकमात्र विजयी होता है। धनात्मक ही ऋणात्मक पर विजय प्राप्त करता है। माँ की पुकार व्यक्ति का इस सत्य की ओर उत्थान करने तथा उसके जीवन को दैवी सकारात्मक का सक्रिय रूप बनाने हेतु है। माँ का संदेश है, सकारात्मक आदर्शवाद के एक व्यावहारिक मूर्तिमान और विजयी बनें, संसार के लिए निरासक्त भाव से उपयोगी बनें। आत्म पूर्णता, समदृष्टि, मन का संतुलन, मानवता की निष्काम्य भाव से सेवा, निःस्वार्थता और पूर्ण विनम्रता ।

इसलिए प्रत्येक का जीवन पूर्ण धर्मपरायणता और पवित्रता पर आधारित हो, अब व्यक्ति का आदर्श और अच्छाई विशेष रूप व्यावहारिक बने। व्यक्ति के सद्गुण जीवंत प्रभावशाली और जीवन को बदलने वाला हो। सभी के कल्याण हेतु प्रयत्न करें, भले बनें, भला करें, अच्छाई का विकिरण करें।

संसार की शांति और मुक्ति दिव्य जीवन व्यतीत करने में सन्निहित है। वह भाईचारा जिसकी व्यक्ति बातें करता है, वह व्यवहार में भी भाईचारा बने तथा बुद्धि और भावनाऐं 'आत्मा एक है' के आदर्श के द्वारा कार्यान्वित हों।

प्रकृति के विकास की गतिविधि सदा अवस्थाओं में कार्य करती है। समस्त क्रियाविधि अथवा निर्माण विकास के नियम के अनुसार ढलती है। विकास वह क्रियाविधि है जो सच्चे जीवन और सच्ची वृद्धि का अनावरण करती है। यह स्थायी प्राप्ति में फलीभूत होता है। इसलिए व्यक्ति को जो सब अच्छा और श्रेष्ठ हैं, उसका अर्जन विकास की सकारात्मक और रचनात्मक क्रियाविधि के द्वारा अर्जन किया जाना चाहिए।

यदि कोई आनंदपूर्ण और अच्छा जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसे सभी प्रकार की हिंसा और घृणा को त्यागना होगा और शांति, निर्मलता और दया की तरंगों को अनुभव और विकरित करना होगा। स्वार्थ, वासना, क्रोध, लोभ और अज्ञानता से रहित जीवन स्वयं ही दिव्य जीवन है। प्रेम के पौधे को रोपित करने के लिए व्यक्ति को ईर्ष्या, घृणा, संदेह और शेष की खरपतवार को उखाड़ना होगा।

बुरे कर्म नहीं करना, तुच्छ से तुच्छ को भी किंचित भी आहत न करना, किसी का भी अपमान नहीं करना, दूसरे के मूल्य पर कमाई नहीं करना, अशुद्ध और अपवित्र न बनना, धूर्त और कपटी न बनें। यही सम्पूर्ण जगत के सभी संतों तथा पैगम्बरों की केन्द्रीय शिक्षा है। किसी भी प्राणी के प्रति क्रूरता स्वयं माँ के प्रति क्रूरता है। धर्म का सार किसी को भी हिंसा न पहुँचाने में निहित है।

सभी घृणा को प्रेम से, बुराई को भलाई से, अन्याय को न्याय से, असत्य को सत्य से, स्वार्थ को निःस्वार्थता से विजय करने हेतु मिल कर कार्य करें। सभी को शांति मिले। देवी माँ का आशीर्वाद सभी को असत्य से सत्य, अंधकार से प्रकाश की ओर, मर्त्यता से अमरता की ओर ले के जाये।

देवी माँ की पूजा (१९५५)

समृद्धि तथा मुक्ति हेतु मार्ग

आदि पराशक्ति को प्रणाम, परम दैवी शक्ति, जो कि विश्व का मूल जो सभी प्राणियों का पोषण करती है तथा जिसकी उदार कृपा जीव को समस्त समृद्धि तथा अंतिम मोक्ष प्रदान करती है।

'न अयं आत्मा बलहीनेन लभ्यः' - यह आत्मा दुर्बलों को प्राप्त नहीं होती। आपका शरीर दृढ़ होना चाहिए। आपका मन स्वस्थ होना चाहिए। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण और सूक्ष्म भेदी होनी चाहिए। आपको शक्तिशाली होना ही चाहिए। आपकी आत्मा देदीप्यमान होना चाहिए। आपके कर्म दृढ़ विश्वास की शक्ति से अनुमोदित होनी चाहिए। आपके शब्द सत्य, धर्मपरायणता और प्रेम की शक्ति से पूर्ण होने चाहिए। आपके विचार शक्तिशाली होने चाहिए तथा वे एक निःस्वार्थता, शुद्धता, दिव्य प्रेम तथा वैराग्य से भरे हुए होने चाहिए, मात्र तभी आप वास्तव में एक दृढ़ और शक्तिशाली व्यक्तित्व के स्वामी होंगे।

नवरात्रि की पूजा हमारे प्राचीन संतों द्वारा आपको इस महान सत्य का स्मरण कराने के लिए स्थापित की गयी है। माँ आपको शक्ति प्रदान करेंगी यदि आप उनके पास एक बच्चे की भाँति सरलता और भोलेपन से जा कर, उनके समक्ष स्वयं को समर्पित करें और प्रार्थना करें: "हे माता, आप ही सब हैं; पापी हूँ अथवा पुण्यात्मा, मैं आपका ही पुत्र हूँ, मुझे ऊपर उठाऐं, क्योंकि आप दया और प्रेम से पूर्ण हैं।"

चूँकि दुर्गा आपके ऊपर तथा आपके संपूर्ण व्यक्तित्व के ऊपर वैभव की वर्षा करती है। वह आपकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक समस्त बाधाओं को दूर करती है तथा आपके बुरे संस्कारों को नष्ट करती है। लक्ष्मी आपको दैवी सद्गुणों से पूर्ण करती है तथा आपको भौतिक समृद्धि भी देती है जिससे कि आप नश्वर आकुलताओं से मुक्त हो जाऐं और अपने आध्यात्मिक आदर्श का अनुकरण कर सकें। सरस्वती आपके लिए आध्यात्मिक ज्ञान के राज्य के द्वार को खोलती है, ताकि आप यथार्थता को देख पाते हैं और आप असत्यताओं तथा इस संसार के मायावी अनुभवों से वापस मुड़ जाते हैं।

अपनी दैवी लीला को यहाँ पर निरंतर करते रहने के लिए अविद्या माया के रूप में वे स्वयं सत्य को आपसे छुपा लेती हैं और आपको इस संसार से बाँध देती हैं। जब वे सच्ची भक्ति तथा

निःशर्त समर्पण से प्रसन्न होती हैं, तो वे विद्या माया के रूप में अज्ञानता के आवरण को हटा कर आपको सत्य को देखने योग्य बनाती हैं।

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदा:
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ।।

"माँ सभी कलाऐं, विद्याऐं, ज्ञान की सभी शाखाऐं आपके ही रूप हैं। इस जगत की सभी स्त्रियाँ आपके ही रूप हैं। आपने ही एकमात्र इस संपूर्ण सृष्टि को व्याप्त किया हुआ है। "

इस महान सूत्र पर ध्यान कीजिए। सभी स्त्रियों में देवी माँ के दर्शन कीजिए। जगत के प्रत्येक रूप में माँ की पूजा कीजिए। वह आपको समस्त कलाओं तथा विद्याओं का स्वामी बना देगी। आप एक देदीप्यमान योगी, ज्ञानी तथा जीवन्मुक्त की भाँति देदीप्यमान होंगे।

आदि पराशक्ति का आप सभी के ऊपर आशीर्वाद बना रहे। आप सभी इसी जन्म में ऋषि, ज्ञानी, भक्त तथा योगी की भाँति देदीप्यमान हों।

मानव का ऊर्ध्वारोहण (१९५६)

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यंबके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

"हे सर्वमंगलकारी! हे आनंद का सागर, समस्त कामनाओं की दाता! हे सभी की शरणदाता, त्रिनेत्र देवी! हे नारायणि, आपको प्रणाम है।"

अमरता के पुत्रो !

देवी माँ की कृपा आप सब पर हो। देवी दुर्गा समस्त जगत पर अपने आशीर्वाद की वर्षा करें। सर्वत्र परम शांति तथा आनंद हो ।

यह संसार एक मंच है जहाँ चेतना और शक्ति के युग्म सिद्धान्तों का बृहत अभिनय चल रहा है। यह संसार शक्ति अनंत की शक्ति जो कि चेतना है का प्राकट्य है। यह चित्शक्ति है जो कि स्वयं को विश्व की विशालतम यथार्थता की भाँति प्रगट करती है। पराशक्ति सर्वत्र ब्रह्म शक्ति, विष्णु शक्ति तथा शिव शक्ति के रूप में भ्रमण करती है। बुद्धि तथा अन्तःप्रेरणा दिव्य प्रकृति के अस्तित्व के सत्य को जो कि प्रायोगिक विषयों के बृहत दृश्यमान जगत को बनाए रखता है तथा क्रियाशील रखता है को स्थापित करता है। पदार्थ ऊर्जा में विलीन हो जाता है। प्रश्नोपनिषद् कहती है कि रायी और प्राण, पदार्थ और ऊर्जा, संपूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं। पदार्थ अन्तर में स्थित शक्ति का बाह्य प्रतीक है जो कि ईश्वर द्वारा अभिव्यक्त होता है। वह शक्ति जो विश्व को जन्म देती है और पोषण करती है, वह जड़ शक्ति अथवा वह विद्युत शक्ति नहीं है जो कि वैज्ञानिकों का अंतिम सत्य बल्कि यह चिन्मय शक्ति है, ब्रह्म की नित्य चेतना की शक्ति। वास्तव में यह वह शक्ति नहीं है जो ब्रह्म की शक्ति है, बल्कि यह वह शक्ति है जो स्वयं ब्रह्म है। ब्रह्म लीला के विश्व के रूप में प्रगट होते हैं, सत्य का सत्य के लिए स्वयं प्राकट्य ।

भगवद्गीता दो प्रकार की प्रकृति, ईश्वर के कार्य के निम्न तथा उच्च रूपों के कार्य के बारे में कहती है, निम्न स्वयं को प्रकृति के दृश्यमान स्वरूप के रूप में अभिव्यक्त करती है तथा उच्च सभी प्राणियों के जीवन के मूल के रूप में अस्तित्वमान रहती है। यह परमात्मा है जो सब कुछ है।

तब यह विश्व मानव साक्षात्कार के सर्वोच्च आदर्श की दृश्यमान अभिव्यक्ति है। इसके उच्च एवं निम्न दोनों रूपों में, प्रकृति स्वयं ही भगवान् के चलते-फिरते शरीर में अभिव्यक्त करती है। श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य को उस प्रभाव हेतु सावधान करती है कि विश्व की प्रत्येक दृश्यमान वस्तु पूजा और आराधना की वस्तु है। भगवान् सभी वस्तुओं के मंदिर में निवास करते है। भगवान् की पूजा का अर्थ है, तत्क्षण व्यक्ति का विश्व के परम वैयक्तिक नियम के साथ सामंजस्य तथा विश्व की योजना जो कि स्थान और समय के ढाँचे में ईश्वर ने निर्मित की है, के प्रति चैतन्यता के साथ आंतरिक व्यवहार के बिना आध्यात्मिक भक्ति और पूजा नहीं हो सकती। बाहर तथा ऊपर स्थित परमात्मा, भीतर तथा नीचे स्थित परमात्मा एक समान ही है। परम देवी की उपासना परम शक्ति की भाँति हो जो कि सभी प्राणियों की अनादि माँ है।

नौ रात्रियों की पूजा को नवरात्रि पूजा कहते हैं। यह महान सृष्टा की उसके दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में जो कि महान सत्य के लिए रज, तम और सत्व गुणों जिनके द्वारा यह विश्व निर्मित है, के द्वारा स्वयं प्रगट है, मनुष्य के द्वारा की जाने वाली आराधना है। रूपांतरण, संरक्षण तथा प्राकट्य महिमामय माँ के दैवी कार्य हैं, जो वे अपने बच्चों के लिए करती है जो सहायता, ज्ञान, समृद्धि तथा अंतिम मुक्ति के लिए उनकी ओर देख रहे हैं। वह विद्या, अविद्या, माया, प्रकृति, शक्ति, देवी अर्थात- वह सब कुछ जो ब्रहमांड के इसके स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण प्रदेश में जीवन के परिदृश्य को बनाते हैं वे ही सब कुछ हैं। दुर्गासप्तशती अथवा देवी माहात्म्य में देवी को महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा, महादेवी तथा माहेश्वरी कहा गया है। वह परब्रहम महिषि, सम्पूर्ण अस्तित्व की स्वामिनी हैं। उसकी कृपा जिज्ञासु में जिज्ञासा का, साधक में साधना का, सिद्धों में सिद्ध का रूप है। वह सभी विचारों, इच्छाओं, भावनाओं, बुद्धि, कार्यों, नाम तथा रूपों के पीछे स्थित सत्य है।

पवित्र दुर्गा नवरात्रि उत्सव, जगत के अन्तर आध्यात्मिक जीवन का उत्सव है। देवी माँ उच्च आध्यात्मिक शक्ति है जो कि निम्न कामनाओं के साथ संघर्ष कर रही है और अन्त में उन पर पूर्णतया विजय प्राप्त कर लेती है। साधना की क्रियाविधि में जो सर्वप्रथम विजित तथा रूपांतरित किया जाता है, वह है तमोगुण– और दुर्गा जो कि तम शक्ति की देवी हैं, प्रथम तीन दिनों उनकी पूजा की जाती है। अगला जो विजित किया जाता है वह है रजोगुण, और लक्ष्मी इसकी अधिष्ठात्री शक्ति हैं, अगले तीन दिनों में उनकी पूजा होती है। अन्त में आता है सत्व गुण, इसलिए अंतिम तीन दिनों की देवी हैं सरस्वती माँ अपने सत्व शरीर में। दसवाँ दिन है विजयादशमी, विश्व की त्रिगुण शक्ति जो कि इसके अविद्या रूप में कार्य कर रही है, जिस पर विद्या शक्ति अथवा उच्च शक्ति के द्वारा विजय प्राप्त की गई है, यह अविद्या के ऊपर पूर्ण विजय तथा आत्मा का परमात्मा की अमर चेतना में विलय का उत्सव है। मधु कैटभ, महिषासुर, शुंभ, निशुंभ आदि वास्तव में आसुरी तत्व हैं,

जो कि निरंतर आत्मा को बाँधते और पीड़ा देते हैं और उनका संधान-शक्ति, मन्त्र शक्ति, ध्यान-शक्ति, गुरु कृपा तथा ईश्वर अनुराग देवी माँ का त्रिरूप इन सभी का साकार रूप है इनको भक्त हिंदू नवरात्रि उत्सव के समय बड़े ही प्रेमपूर्वक पूजा करते हैं और यह देवी माँ आत्मा को निरन्तर बाँधने और कष्ट देने वाले आसुरी तत्वों मधु कैटभ, महिषासुर, शुंभ-निशुंभ आदि का नाश कर देती है।

परमानंद के खोजी ! अपनी हृदय की प्रार्थना को, पराशक्ति को जो कि आपकी आत्म शक्ति ज्ञान शक्ति है तथा जो मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी है को अर्पित करो। आत्मा की प्रत्येक सच्ची प्रार्थना वह शक्ति उत्पन्न करती है, जो अज्ञानता के किले को भेदती है और आत्मा को सत्य के रहस्यों में, सच्चे जीवन और प्रकाश में सफलता प्राप्त करने के योग्य बनाती है। पावन नवरात्रि आपके लिए आत्मसाक्षात्कार की साधना के शक्तिशाली अभ्यास का आरंभ करे। जप, संकीर्तन तथा ध्यान के द्‌वारा अपनी आंतरिक दृढ़ता प्राप्त करें। नौ दिनों तथा नौ रातों में कठोर संयम का पालन करें तथा अपने समय का प्रार्थना, पारायण तथा ध्यान में सदुपयोग करें। विषयाश्रित चेतना जो कि बाहय तथा आंतरिक विश्व में दृश्यमान है के आवरण आत्मा का अविनाशी की ओर उत्थान । मानव का भगवान् की ओर ऊर्ध्वारोहण अनुभवों के राज्य के नियमों की क्रमशः पूर्णता और उनका आत्म अनुभव में रूपांतरण। शक्ति शिव के लिए मार्ग है। दैवी माँ अस्तित्व के परम अन्तों परम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के मानवीय प्राणी के द्‌वारा प्राप्ति का वादा तथा संभाव्यता है। उनकी कृपा के लिए उनकी ओर देखें। आपका इस लोक का तथा परलोक का अभ्युदय, निःश्रेयस, समृद्‌धि सुनिश्चित हो जाएगी। माँ पराशक्ति आप सभी पर अपने आशीर्वाद की वृष्टि करें।

देवी कीर्तन

१. ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ
ब्रह्म शक्ति विष्णु शक्ति शिव शक्ति ॐ
आदि शक्ति महा शक्ति परा शक्ति ॐ
इच्छा शक्ति क्रिया शक्ति ज्ञान शक्ति ॐ

२. गौरी गौरी गंगे राजेश्वरी
गौरी गौरी गंगे भुवनेश्वरी
गौरी गौरी गंगे माहेश्वरी
गौरी गौरी गंगे मातेश्वरी
गौरी गौरी गंगे महा काली
गौरी गौरी गंगे महा लक्ष्मी
गौरी गौरी गंगे पार्वती
गौरी गौरी गंगे सरस्वती

३. जय राधे जय राधे राधे
जय राधे जय श्री राधे
जय सीते जय सीते सीते
जय सीते जय श्री सीते

४. जय सरस्वती जय सरस्वती जय सरस्वती पाहि माम्
जय सरस्वती जय सरस्वती जय सरस्वती रक्ष माम्
जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी पाहि माम्
जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी रक्ष माम्
जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे शरण ॐ ।
जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे नमः ॐ

५. भवानी शंकरी गौरी शंकरी
शिवकामी शंकरी उमा शंकरी
अखिलेश्वरी मातेश्वरी

माहेश्वरी त्रिपुर सुंदरी
अखिलेश्वरी मातेश्वरी
माहेश्वरी परमेश्वरी (सर्वेश्वरी)

६. गंगा रानी गंगा रानी गंगा रानी पाहि माम्
भागीरथी भागीरथी भागीरथी रक्ष माम्

७. दीनोद्धारिणी दुरितहारिणी सत्व रज तम त्रिगुण धारिणी
संध्या- सावित्री-सरस्वती गायत्री राधा रुक्मिणी पंकज लक्ष्मी

८. आदि दिव्य ज्योति महा कालि माँ नमः
मधु शुंभ महिष मर्दनी महा शक्तिये नमः
ब्रह्म विष्णु शिव स्वरूप त्वं न अन्यथा
चरा चरस्य पालिका नमो नमः सदा

९. देवी भजो दुर्गा भवानी
जगत जननी महिषासुर मर्दिनी

१०. जगत जननी संकट हरण
त्रिभुवन तारिणी मातेश्वरी (माहेश्वरी)

११. अविद्या नाशिनी, भ्रांति नाशिनी, जगत जननी
आनंद दायिनी, विद्या दायिनी, मोक्ष दायिनी
आनंद करणी, कल्याण कारिणी, मोक्ष कारिणी

सर्वेषां स्वस्तिः भवतु, सर्वेषां शांतिर्भवतु ।
सर्वेषां पूर्ण भवतु, सर्वेषां मंगलं भवतु ।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिदद्दुःखभाग्भवेत् ।।

असतो मा सद्गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

देवी आरती

जय अम्बे गौरी! मैया जय मंगलमूरती!
मैया जै आनन्दकरणी !
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री!

ॐ जै अम्बे गौरी !

माँगसिन्दूर विराजत टीको मृगमदको,
उज्ज्वल से दोऊ नैना चन्द्रवदन नीको।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजे,
रक्तपुष्प वनमाला कण्ठन पर साजे ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

केहरिवाहन राजत शंख-खप्पर-
सुरनरमुनिजन सेवित तिनके दुःखहारी ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती,
कोटिक चन्द्र दिवाकर राजत सम ज्योती ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

शुम्भ निशुम्भ विदारे महिषासुर घाती,
धूम्रविलोचननाशिनि निशिदिन मदमाती ।।

ॐ जे अम्बे गौरी!

चौंसठ योगिनि गावत नृत्य करत भैरूँ,
बाजत ताल मृदंगा अरु बाजत डमरू ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

भुजा चार अति शोभित शंख- खप्पर-धारी,
मनवांछित फल पावत सेवत नर-नारि ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !

कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती,
श्री मालकेतु में राजत कोटि रतन ज्योती ।।

ॐ जै अम्बे गौरी!

या अम्बे जी की आरती जो कोई नर गावे,
कहत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पत्ति पावे ।।

ॐ जै अम्बे गौरी !